स्वदेश परिचय-माला

भारतीय संस्कृति की कहानी
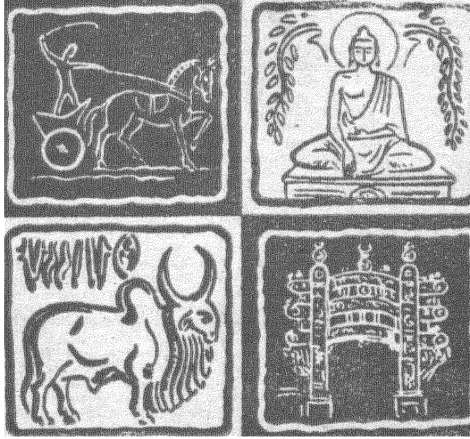
भगवतशरण उपाध्याय

प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्ज़,

कश्मीरी गेट : दिल्ली

द्वितीयावृत्ति
मार्च १९५६

चित्रकार
के. सी. आर्यन

मूल्य
रंगीन संस्करण १।)

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली।

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-६.

भारतीय संस्कृति की कहानी

: १ :

सदा से आदमी ऐसा नहीं रहा है जैसा वह आज है। जमाना कभी ऐसा न था कि पेड़ों में रोटियाँ फलती हों और आदमी तोड़कर चट खा लेता हो। बल्कि एक दिन था, जब उन सारी चीजों का जो हमारे चारों ओर दीखती हैं, अभाव था। हर चीज जरूरत से, समय-समय पर आदमी ने बनाई है। जरूरत, सूझ और मेहनत से धीरे-धीरे आज की दुनिया बनी है। धीरे ही धीरे इन्सान अपने बनैले, जानवर के-से जीवन से दूर आज की दुनिया की ओर हटता आया है। उसकी खोज और ईजाद करनेवाली अक्ल ने उसकी इन्सानी दुनिया बनाई और बसाई है। यही सभ्यता है—बनैले जीवन से इन्सानी जीवन की ओर बढ़ना सामाजिक जीवन का विस्तार।

संस्कृति का सम्बन्ध उसी सामाजिक जीवन से अधिक से अधिक है। जब आदमियों का एक दल या समाज एक ही रीति से कुछ करता है, एक ही विश्वास रखता है, एक ही प्रकार के आदर्श सामने रखता है, अपने पुरखों के कामों को समान रूप से अपने आदर, गर्व और गौरव की चीज

मानता है, तब संस्कृति का जन्म होता है। संस्कृति आदमी के सामाजिक जीवन का प्राण है।

बनैले जीवन से मिले-जुले जीवन की ओर बढ़ना, सभा
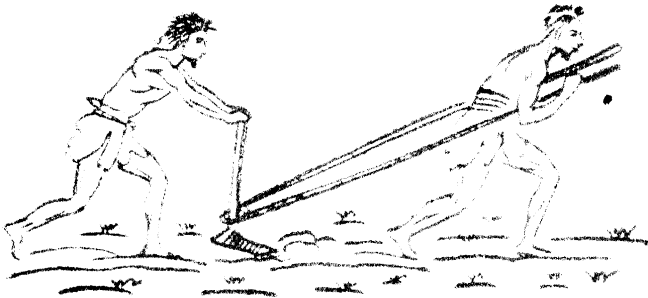
खेती का आरम्भ हुआ

बनाकर उसमें बैठने की तमीज़ पैदा करना, सभ्यता है। बाण का इस्तेमाल, खेती का आरम्भ, गोल पहिये की खोज,
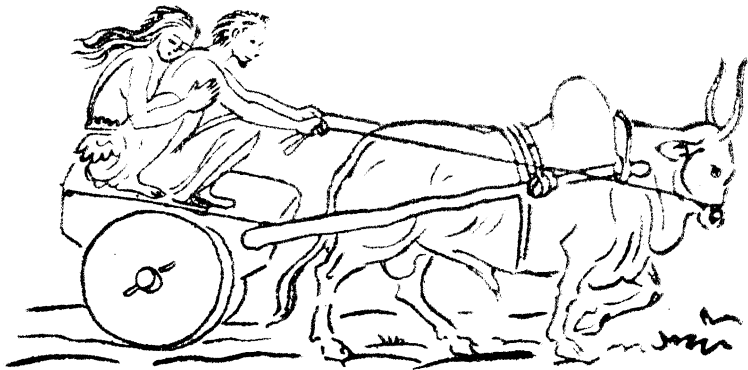
गोल पहिये की खोज की

गाँव में इंसान का एक साथ मिलकर बसना, सभ्यता की मंजिलें हैं। संस्कृति विचारों की दुनिया है। पूजा, धर्म, दर्शन, राष्ट्र, सामाजिक संगठन उसकी मंजिलें हैं।

आदमी एक-दूसरे से मिलकर सीखता और सिखाता है। इसी तरह एक स्थान पर रहने वाले दूसरे स्थान के रहने वालों को सिखाते और उनसे सीखते हैं। इस प्रकार सभी सबसे सीखते और सबको सिखाते हैं। समाज में रहना ही सीखना और सिखाना है। जिस देश के रहने वालों को दूसरे देश वालों से जितना ही मिलने का मौका पड़ता है उतनी ही तेज़ी से वे उनसे सीखते हैं, उन्हें सिखाते हैं।

इस विचार से हमारा देश बड़ा भाग्यवन रहा है। क्योंकि यहाँ बसने या आहार की खोज में लोग बराबर आते रहे हैं; यहाँ वालों में घुल-मिल गए हैं, यहां वालों को सिखाते रहे है, यहां वालों में घुल-मिलकर उनसे सीख कर उनके हो गये हैं। अपने विचारों-विश्वासों को साथ लेकर आए हैं। अपने विचार यहाँ वालों को दिये हैं, यहाँ के विचारों को अपना लिया है। दोनों के मिलने से तीसरे क़िस्म के सच्चे विचार चल निकले हैं। एक नई संस्कृति पैदा हो गई है।

किसी चीज़ पर जब दूसरी चीज़ का धक्का लगता है तब उसमें गति होती है। वह हिल जाती है, चल पड़ती है। एक देश की सीमा पर दूसरे देश के लोग आ खड़े होते

हैं। दोनों एक-दूसरे को घूरते हैं। फिर लड़ पड़ते हैं, दूसरे हारते हैं। साथ रहने लगते हैं, घुल-मिल जाते हैं। पहले उनके रहने-सहने के तरीके, धर्म, विचार अलग-अलग थे; भिन्न-भिन्न। अब वे भिन्न-भिन्न नहीं रहे, एक हो गए। आपस में नजदीक, अपने परायों से मिलते-जुलते, पर दूर। संस्कृति ने एक नया कदम लिया, नई मंज़िल सर की।

भारत में अनेक जातियां बाहर से आईं, यहां वालों से लड़ीं, तोड़ा-फोड़ा, बरबाद किया, फिर दोनों मिलकर एक होगईं। दोनों की मिली-जुली संस्कृति हमारी बपौती हुई, हमारे गर्व और गौरव की चीज़। जब-जब नई जातियों से हमारा वैर या प्रेम का सम्बन्ध हुआ, तब-तब हममें नई चेतना आई, नया जीवन आया, हमें नई ताकत मिली। हमारी संस्कृति की कहानी नई जातियों के हमसे मिलने से बनी इसी नई चेतना, नये जीवन, नई ताकत की कहानी है।

संस्कृति उतनी ही पुरानी है जितनी सभ्यता। क्योंकि किसी न किसी रूप में विचार का झटका लगता ही रहता है। आदमी आग का इस्तेमाल सीखकर सभ्यता की एक कड़ी जोड़ता है। पर तभी उसकी यह बनती हुई रुचि बगैर रांधे खाना बनैलापन है, संस्कृति की बुनियाद रखती है। सर्दी से बचने के लिए वह जानवरों की खाल या पेड़ों के

आग का इस्तेमाल सीखता है

छाल-पत्ते पहनता है, सभ्यता में एक डग भरता है। पर तभी लाज बचाने के लिए तन को ढकना या अच्छा लगने के लिए खाल को साफ, चिकना करके पहनने की रुचि, संस्कृति की इकाई

खाल या पेड़ों की छाल पहनता है

खड़ी करती है। निहत्था इन्सान पंजों-दाढ़ों-सूंडोंवाले बड़े-बड़े भयानक जानवरों को मारने के लिए पत्थर घिस-

पत्थर घिसकर हथियार बनाता है
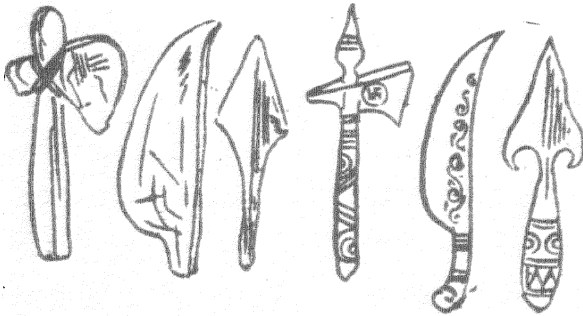
कर जो हथियार बनाता है, वह सभ्यता की खोज है। पर वही जब उस हथियार की मूठ पर मनोहर रूप खींच देता है तब वह संस्कृति सिरजता है। अहेर में सफल होने के लिए गुफा में रहनेवाला बनैला इन्सान गुफा की दीवार पर लकीरों में शिकार की शक्ल बनाकर जब उसे बाण या भाले से मारा जाना दिखाकर टोना जादू करता है, तब वह सभ्यता का विकास करता है। पर वही जब दीवार पर खिंची लकीरों को रंग देता है, खाली जगह में रंग भर देता है, तब संस्कृति रूप धारण करती है। आदमी डर से माथा टेक देता है, बर्बर बलि देता है, सभ्यता धर्म की बुनियाद के रूप में आगे बढ़ती है, पर उसी डर के आधार पर उसे

भूलकर जब वह पूजा के धूप-नैवेद्य चढ़ाकर गीत द्वारा देवता को रिझाता है, तब संस्कृति का गौरव बढ़ता है। चारों

पशुओं की बलि देता है

ओर की चीज़ों को देखकर वह चकित होकर पूछता है—ये कहाँ से आईं ? इन्हें किसने बनाया ? ये फिर कहाँ जाएँगी ? तब वह चीज़ों को जैसे का तैसा छोड़ बनैले मानव की तरह

उनका उपयोग नहीं करने लगता, यह तमीज़ उनकी सभ्यता की बोधक है। पर जब वह सुनकर इन अपने ही सवालों का जवाब देने लगता है, तब वह दर्शन का आरम्भ करता है, जो संस्कृति की जान है।

हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति की कहानी बड़ी दिलचस्प है। हजारों-हजारों बरस पहले हमारे देश में भी और देशों की ही तरह, आदमी आहार की तलाश में जंगल में भटकता है। उसका शिकार दूसरे खूनी जानवर करते हैं, वह दूसरे जानवरों का करता है। जान का कोई मोल नहीं है। आज है, कल नहीं। आदमी निहत्था है, प्रकृति ने उसे और जानवरों की तरह न तो सींग दिये हैं, न नाखूनी पंजे, न दाढ़, पर उसे हाथ ऐसे दिये हैं कि उनकी मदद से वह दुश्मनों से अपने बचाव के हथियार बना लेता है—पत्थर, हड्डी आदि के हथियार, जिन्हें वह घिसकर तेज़ कर लेता है।

पहले उसके पास भाषा नहीं, केवल कुछ आवाज़ें हैं—प्यार और मित्रता की आवाज़ें कोमल, गुस्से और वैर की कठोर। अपने-से निहत्थों की ही उसकी दुनिया है—नर-मादा, बच्चे। ऐसे ही दूसरे नर-मादा और बच्चे। लोग पहले पेड़ों पर रहते हैं, बन्दर की ही तरह तेजी से एक डाली से दूसरी पर उछल जाते हैं। फिर पहाड़ों की गुफाओं में रहने लगते हैं। वैसे नंगे रहते हैं, जाड़ों में मरे शिकार की खाल

लपेट लेते हैं। नदी की सतह पर बहती लकड़ी को देख उस पर बैठकर बहने लगते हैं, मछली मारकर आहार भी करते
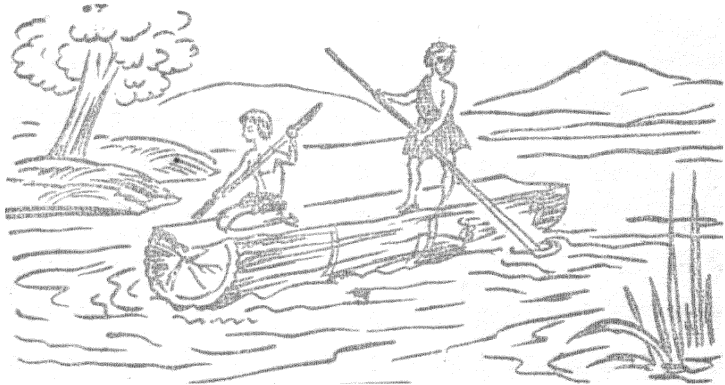
बहती लकड़ी पर बैठकर बहने लगते हैं

हैं। उन्हें एक प्रकार का सालाना कलैंडर या ऋतुओं का एक के बाद एक कर लौटना भी मालूम है। जंगली आग में जले जानवरों का मांस खाकर सीख लेते हैं कि उन्हें भूनकर खाना ज्यादा स्वादिष्ट है। स्वयं जलाकर आग का इस्तेमाल भी सीख लेते हैं। यह पुराने पत्थर का युग है, जब तांबा, लोहा वगैरह धातुओं का इस्तेमाल इन्सान को नहीं मालूम था, वह केवल पत्थर का ही इस्तेमाल करता था। ऐसे आदमियों की शिकार करती हुई तस्वीरें मिर्जापुर की गुफाओं में पाई गई हैं।

ज़माना बदलता है। आदमी अपने हथियार चिकने

और सुन्दर कर लेता है। हैं वे फिर भी पत्थर, हड्डी या हाथी दांत के ही। पर अब वे पहले से चोखे हैं, अधिक काम के हैं, तेज़ हैं। उन पर एक प्रकार की पालिश भी है, उनकी मूठ पर लकीरों से तस्वीरें बनती हैं। यह नए पत्थर का युग है। इन युगों के नाम आहार की खोज के ज़रियों से पड़े हैं। मनुष्य जाति का इतिहास जिन्दगी की सुन्दर-सुन्दर बातों के होते भी ज्यादातर आहार के इन्हीं बदलते ज़रियों का इतिहास है। जैसे-जैसे आहार पैदा करने के ज़रिए, उसके साधन, बदलते जाते हैं, वैसे ही वैसे युग भी बदलता जाता है, उसके रहने के तौर-तरीके, समाज, सब बदलते जाते हैं।

पत्थरों के नए युग का आदमी भी कुछ कम जंगली नहीं है। पर आगे वह बहुत बढ़ गया है। उसने अपने रहने-सहने में बडा फर्क डाल दिया है। क्रान्ति कर ली है। अब
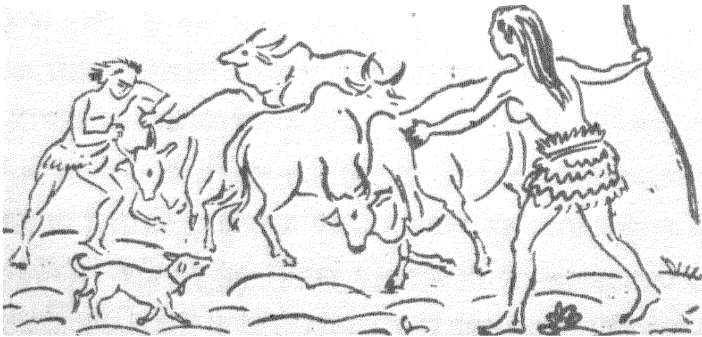
पशु भी पालते हैं

वह अपने आहार के लिए केवल आफत से भरे जानवरों के शिकार ही नहीं करता, घास-पत्ती खानेवाले जानवर, गाय-बैल-भेड़-बकरी पालता भी है। उनसे ढोर की संख्या कम नहीं होती और आहार बराबर मिलता रहता है। अब तनहा नहीं कि इधर-उधर भटकता फिरे। ढोरों को लेकर आना-जाना पहले का-सा आसान नहीं, इससे वह दल के दल बनाकर बहुत काल एक ही जगह रहने लगा है। साथ ही उसकी सूझ ने धीरे-धीरे यह भी जान लिया है कि इन्सान अन्न उगा सकता है। आदमी फिर खेती भी करने लगता है, पर अभी वह जमीन गोड़कर बोता है, पीछे हल बनाता है, जिसका फल पत्थर और हड्डी का है। फ़सल खड़ी करके वह उसे छोड़ नहीं सकता। बार-बार नया खेत बनाना भी आसान नहीं, इससे वह एक ही जगह और अधिक
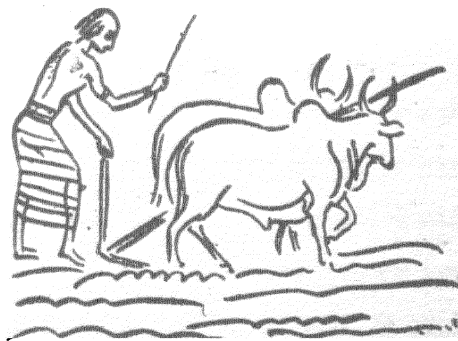
हल बनाता है

बसकर रहने लगता है। उसके गांव बस जाते हैं। इन गांवों में अनेक कुल हैं, कुलों से कबीले बनते हैं। एक कुल दूसरे कुल से लड़ता है, एक कबीला दूसरे से, एक गांव दूसरे से। भीतर

शान्ति है, बाहर खतरा। सबकी एक साथ ज़मीन है, एक साथ चरागाह है।

वह छाल और खाल पहनता है

आहार अब केवल शिकार, मछली, जंगली फल और अन्न का ही नहीं, अपने बूते उपजाई फसल का भी है। साथ ही ढोरों से उसे दूध, पनीर आदि भी मिलने लगा है। वह पत्ते बुनकर, पेड़ों की छाल और जानवरों की खाल पहनता है। सामान रखने के लिए चगेलियां बुनता है। चाक का इस्तेमाल जान गया है। जिससे बर्तन-भांड़े भी उतार लेता है। जान-वरों पर माल ढोता है, बैल-गाड़ी पर भी, क्योंकि वह अब अपने इस ज्ञान का फायदा उठाने लगा है

चाक का इस्तेमाल जान गया है

कि गोल पहिया ही चिपटी जमीन पर दौड़ सकता है। पशु-पालन, खेती और चक्के का इस्तेमाल इस नए आदमी की सबसे बड़ी खोजें हैं। वह अब कुछ फुरसत का आदमी है, जिसके पास खाने से बची कुछ इफरात है, जिसे वह कल के लिए बचाकर रख सकता है। पर तभी चोरी का आरम्भ होता है, फालतू माल की चोरी का। और जिसके पास इफरात है, वह उसे बचाने के लिये अपने-जैसों के साथ कुछ नियम बनाता है। आदमी के ये नियम उसके पहले कानून हैं।

सभ्यता की एक मंजिल और भी आगे सरक जाती है। पर अब की मेहनत और भी जी-तोड़ है। प्रकृति से खासी लड़ाई है, पर आदमी है जो उसे भी सर कर लेता है। खेती दैव पर कायम है। ज़मीन जोतने-बोने के लिए पानी चाहिए, पर मेंह का क्या, कभी बरसा, कभी न बरसा। आदमी आसमान का ही मुँह नहीं तकेगा। उसने रात के अंधेरे को चिराग़ से जीता है, वह

प्रकृति से खासी लड़ाई है

अंधेरे को चिराग़ से जीतना है

दिन की यह मुश्किल अक्ल से सर करेगा। बड़े-बड़े गड्ढों में बरसात का पानी रोक वह उससे मेंह के अभाव में खेत सींचता है। पर इतने से ही उसे संतोष नहीं होता। वह नदी-नालों को बांधकर उनका जल झील में बदल देता है। आज तक संसार में जितने 'डेम' बन रहे हैं, उनका पहला बनाने

'डेम' सबसे पहिले उसी समय बनता है

वाला वही द्रविड़ सभ्यता का आदमी है। उन झीलों से सिंचाई के लिए वह नहरें निकालता है।

वह तंगी का जीवन नहीं बिताता। नदियों को वह सर कर चुका है। अब वह पृथ्वी की छाती फाड़ उसके रत्न निकाल लेता है—सोना, चांदी, तांबा, टिन। वह धातुओं का

पृथ्वी की छाती फाड़ कर धातु निकालता है रत्न निकालता है
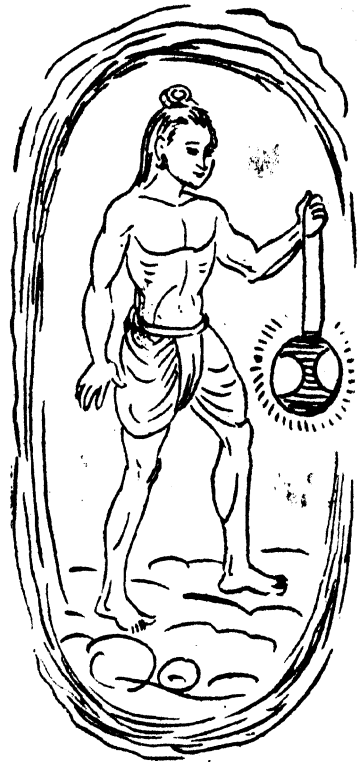
जीवन पहली बार शुरू करता है। इन धातुओं से ही उसे संतोष नहीं होता। इन्हें ढालकर एक-दूसरे से मिलाकर
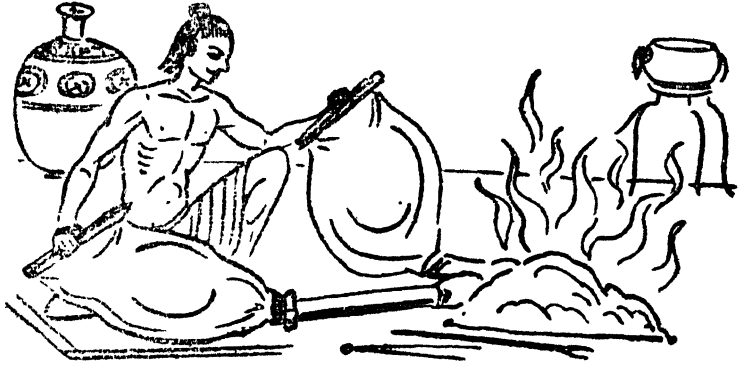
वह धातुएं मिलाता है

नई वस्तुएँ बनाता है। जैसे तांबा और टिन मिलाकर कांसा। उसके बाद का युग कांसे का युग है।

उसका अपना कुनबा है, बीवी है

इस तीसरी मंज़िल के आदमी का जीवन बनैलेपन से बहुत दूर है। शायद उसका अपना कुनबा है, बीवी है, जिससे वह शादी करता है। वह उसे दूसरों से बचाता है, उसके लिए मर मिटता है। एक की बीवी दूसरा नहीं उठा ले,

पहले औरत मज़बूत थी, अब आदमी मज़बूत है

उसके लिए वह कानून बनाता है। पहली बार व्यभिचार, यानी दूसरे की बीवी हड़प जाना, पाप कहलाता है। लाखों बरस पहले, औरत मर्द से भी अधिक मज़बूत थी। मालिक वह थी, मर्द उसका मुँह ताकता था। अब आदमी उससे मज-

गीली मिट्टी से घर को लीप देता है

किलेबन्दी करता है

बूत है, घर का मालिक है।
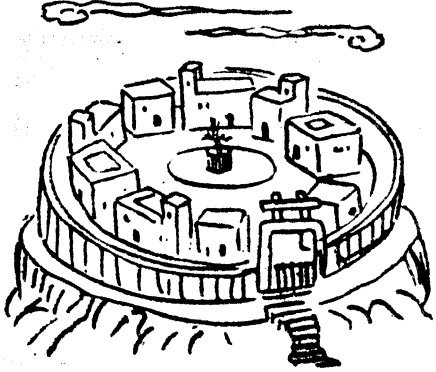
आदमी अपने घर मिट्टी से बनाता है, उसे फूस से छाकर गीली मिट्टी से लीप देता है। घरों के समूह को गाँव कहता है, गाँव के दुश्मनों से बचाव के लिए उसको दीवार से घेर-कर किलेबन्दी करता है। वह कपास उगाता है, रूई का कपड़ा घर पर बनाकर पहनता है। उसके पास भेड़ें हैं, उनकी ऊन से कपड़ा बनाता है। अपने भाँड़े-बर्तनों को नए पत्थर-युग के आदमियों से भी सुन्दर रंगता है, उन पर सुन्दर चित्र बनाता है।

भांडे-बर्तन रंगता है

वह अब सोचता भी है। पौधा कैसे कल छोटा था, आज बड़ा हो गया, फिर विशाल पेड़—कैसे? झरना कल-कल बहता है, उसकी बनाई नदी आदमियों-जानवरों को बहा ले जाती है, निगल जाती है—कैसे? तूफान में तड़प क्यों है? सांप फुफकार कर काटता है और आदमी-मवेशी मर जाते हैं—कैसे? इन सब में कुछ न कुछ है। कुछ डरावना, कुछ बलवान्। इस तरह वह सोचता है और उन्हें पूजने

झरने और सांप को भी पूजता है

लगता है—पेड़ को भी, झरने-नदी को भी, सांप को भी, और उनको भी जो मर गए। क्योंकि वे कहां गए, वह नहीं समझ पाता। समझता है, कहीं हैं। इससे वह उन्हें भी पितर मानकर पूजता है। जो खाता है, उन्हें भी खिलाता है। उन पर जानवर, आदमी तक की बलि चढ़ाता है। इस प्रकार से धर्म का जन्म होता है। आदमी का अचरज से सवाल करना और सोचकर उसका जवाब देना, उन विचारों की बुनियाद डालता है, जिन्हें लोग आज दर्शन

कहते हैं। 'दर्शन' माने देखना। आखिर विचार भी तो एक तरह से देखे ही जाते हैं।

इस युग की सभ्यता को विद्वान् द्रविड़-सभ्यता कहते हैं। पर द्रविड़ अपने ही देश के थे या बहुत पहले कहीं बाहर से आए थे, कोई नहीं जानता।

: ३ :

धीरे-धीरे अपनी सभ्यता उस मंजिल पर पहुँची, जिसे तांबे या काँसे का युग कहते हैं। इस युग की सभ्यता दक्खिन, पंजाब और सिन्ध में, अधिकतर सिन्धु नदी की घाटी से फैली थी, इसी से उसे सिन्धु घाटी की सभ्यता भी कहते हैं। उस सभ्यता के खंडहर पंजाब के मांटगोमरी जिले के हड़प्पा, और सिन्ध के लारकाना जिले के मोहनजो-दड़ो में मिले हैं। वह सभ्यता आज से करीब पाँच हजार साल पहले जीवित थी।

उनको देखने से पता चलता है कि वह सभ्यता नागरिक थी। उसका जीवन शहरी था और शहर खास किस्म के बने थे। एक-दूसरे को काटती हुई सड़कों पर खड़े, आग और धूप में पकाई ईंटों के बने अधिकतर दोमंज़िले मकान थे, उनमें रहने-नहाने के मकान थे, छतें थीं, कुएं थे, पानी बहने के लिए नालियाँ थीं, कूड़ा फेंकने का इन्तज़ाम था। नगर में रहने वालों के नहाने के लिये बड़े-बड़े तालाब थे, जिन्हें कुएँ के पानी से नल द्वारा भरा और खाली कर दिया जाता था।

लोगों का रहना-सहना सादा था। खेती उनकी खास जीविका थी, वैसे दूर-दूर तक उनका रोज़गार फैला था। वे पत्थर के साथ ही धातुओं का इस्तेमाल करते थे, खास कर ताँबे और काँसे का। उन्हीं के उनके हथियार भी थे। तब लोहे का पता नहीं था। जेवर मर्द-औरत दोनों पहनते थे। सोने, चाँदी, पीतल, हाथीदांत, मिट्टी आदि के जेवर।

पशुपति शिव

व्यापार का बाट

घर में ही सूत बनता था और करघे पर सूत से कपड़ा बुन लिया जाता था। खादी की किस्म का कपड़ा। वैसे ऊन का इस्तेमाल भी होता था। अनाज के अलावा लोग मांस भी खाते थे। घोड़ों और कुत्तों को छोड़ हाथी, ऊंट, भेड़ बकरी, गाय, बैल आदि सभी का मांस खाते थे। रथ में सांड ही जुतते थे। व्यापार में बाट का इस्तेमाल खूब होता था, हजारों बाट वहाँ के खंडहरों में मिले हैं।

एक मुहर पर सींगवाले देवता की मूर्ति पशुओं के बीच बैठी खुदी मिली है, जिससे पता चलता है कि शिव की पूजा किसी न किसी रूप में होती थी, क्योंकि 'पशुपति' शिव का ही एक रूप माना जाता है। शायद शिवलिंग की भी पूजा होती थी और देवी की मूरतों की भी। एक मूरत ध्यान लगाये लोगों की भी मिली है। जिससे पता चलता है कि लोग योग जानते थे, अपने मृतकों को कुछ लोग गाड़ते थे, कुछ जलाते थे, कुछ जलाकर उनकी राख गाड़ देते थे।

उस काल भारत की कला, खासकर मूर्ति बनाने का हुनर, बहुत बढ़ा-चढ़ा था। जो मूरतें मिली हैं, उनसे साबित होता है कि उस युग की दुनिया में तो वह सभ्यता लासानी थी, उसकी मूरतों की बराबरी आज भी हो सकनी कठिन है। हजारों मूरतें कांसे, पत्थर और मिट्टी की मिली हैं, जिन्हें देखते ही बनता है। खासकर मोहनजोदड़ो की काँसे की नारी-मूरत और हड़प्पा की पत्थर की मूरत तो ग़जब की है। हजारों मुहरें भी मिली हैं, जिन पर अनेक जानवरों की खूबसूरत तस्वीरें उभरी खिची हैं। इनमें एक सांड वाली मूरत तो आज की दुनिया में भी अपना सानी नहीं रखती। इन मुहरों पर एक प्रकार की तस्वीरनुमा लिखावट भी है, जो अब तक पढ़ी नहीं जा सकी। मुहरों का इस्तेमाल लोग चिट्ठी-पत्रियों पर ठप्पा लगाकर करते थे।

यह सभ्यता संसार की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से

है। उस काल कुछ और भी संसार में सभ्यताएँ थीं, जैसे मिस्र में, सुमेर में, चीन में। सुमेर की सभ्यता बलोचिस्तान के दूसरी ओर दजला और फरात नदियों के मुहाने पर फैली थी, शायद समूचे बलोचिस्तान में भी। सुमेर की और हमारी सभ्यता बहुत मिलती-जुलती थी। इससे कुछ लोग दोनों को सिन्धु-सभ्यता का ही विस्तार मानते हैं। कुछ अजब नहीं, जो सुमेर की सभ्यता भी द्रविड़ों की बनाई हुई हो।

किसे गुमान था कि रेत से ढकी सिन्धु की ज़मीन पर कभी गेहूँ के खेत लहलहाते थे; एक से एक बढ़कर नगर खड़े थे; लोग शान्ति से रहते और खेती और रोज़गार करते थे। किसी से लड़ना-भिड़ना उन्हें मंजूर न था पर उनका यह जीवन बराबर चल न सका। एक दिन उत्तर से एक विकराल लड़ाकू जाति आई, जिसने उस सभ्यता के नगर बरबाद कर दिए, उस नागरिक सभ्यता को खत्म कर दिया और उसकी जगह अपने गाँव के बल्ले गाड़े। ये बड़े ताक़तवर थे, घोड़े पर चढ़कर लड़ते थे, ऊँचे, गोरे-चिट्टे थे। इनके पास मारने के हथियार तो थे ही, बचाने के कवच भी थे, जो यहाँ वालों के पास न थे। और वह सभ्यता आज से करीब चार हजार साल पहले मिट गई।

: ४ :

वह सभ्यता मिट तो गई, पर अपनी छाप अपने जीतने वालों पर छोड़ती गई। जीतने वालों ने उनसे बहुत-कुछ सीखा, उनका धर्म, टोना-टोटका, योग सभी कुछ। उनकी नारियाँ ले लीं। । उनसे अपना परिवार भी बढ़ाया। जीतने वाले अपने को आर्य, यानी श्रेष्ठ कहते थे।

आर्यों का हाल हमें उनकी धर्म-पुस्तक 'ऋग्वेद' से मालूम होता है। ऋग्वेद संसार की सबसे पुरानी पोथियों में माना जाता है। उसमें छन्द और मंत्र हैं, जिन्हें आमतौर से ऋचाएँ कहते हैं। इन्हीं ऋचाओं के नाम पर उस पोथी का नाम ऋग्वेद पड़ा। ऋक् माने ऋचाएँ (छन्द, मन्त्र), वेद माने ज्ञान, इल्म। ऋग्वेद में ये ऋचाएं और छन्द जो समय-समय पर बने हैं, इकट्ठे कर लिए गए हैं। इनको इकट्ठा बाद में किया गया। इकट्ठे किए जाने से उन ऋचाओं की पोथी—संहिता के दस भाग हैं, जिनमें से हर एक को मंडल कहते हैं। पूरी संहिता में १०२८ सूक्त हैं। एक ही विषय के, एक ही देवता या अन्य कई देवताओं के कहे छन्द एक साथ जो रख लिए गए हैं, उन्हें सूक्त कहते हैं। छन्द, मन्त्र या ऋचाएँ

देवताओं की प्रार्थना या कृपालु राजाओं, दानियों आदि की प्रशंसा में कई कुलों के कवियों ने बनाई हैं। उन कवियों को 'ऋषि' या सच्चाई और धर्म की पहचान करने वाला कहा गया। ऋषि पुरुष और स्त्री दोनों ही होते थे। ऋग्वेद की कविता अत्यन्त सजीव और सुन्दर है, खासकर उषा और वरुण के सम्बन्ध की।

ऋग्वेद से आर्यों के रहन-सहन का काफी पता चलता है। लगता है, वे अफ़गानिस्तान से गंगा-जमुना-घाघर तक धीरे-धीरे फैल गए थे। काबुल से घाघर तक के बीच की नदियों के नाम उसमें मिलते हैं। उनकी जाति कबीलों में

लड़ाई में सुदास जीता

बँटी हुई थी; जिन्हें 'जन' कहते थे। उनके 'पांचजन' प्रसिद्ध थे। वे आपस में भी लड़ते रहते थे। उनकी एक तब बड़ी लड़ाई हुई थी; दस राजाओं में, जिसमें सुदास जीता था। वह लड़ाई पुरोहिताई के लिये हुई थी। पुरोहिताई में बड़ा धन मिलता था, पर ब्राह्मण उस पर अपना अधिकार जमाए हुए थे, किसी और को उसमें घुसने नहीं देते थे। क्षत्रिय भी उसमें हिस्सा लेना चाहते थे। विश्वामित्र उनके अगुआ थे। दोनों अपने-अपने हिमायती राजा चढ़ा लाये। समर छिड़ गया। इस प्रकार का एक उदाहरण परशुराम के क्षत्रियों के संहार में भी मिलता है। यह ब्राह्मणों-क्षत्रियों की आपसी दुश्मनी, ताकत और धन के लिए, इस देश में बहुत काल तक होती रही थी। उसकी बात फिर कहेंगे।

सबका मुखिया राजा कहलाता था

आर्यों का जीवन सादा, गाँव का, किसानों का था। उनका परिवार 'कुल' या गृह कहलाता था, उनका समूह

'ग्राम'। अनेक ग्राम मिलकर 'विश' होते थे, अनेक विश 'जन'। इस जन का मुखिया 'राजा' कहलाता था, जिसे जनता चुनती थी। बाद में राजा एक ही कुल से चुने जाने लगे और राज्य पर उन्होंने पुश्तैनी अधिकार कर लिया। फिर भी वह मनमानी नहीं कर पाता था, क्योंकि पुरोहित, सेना-पति और गांव का मुखिया जनता की ओर से उस पर नज़र रखते थे। इनके अलावा जनता की दो सभाएँ, 'समिति' और 'सभा' नाम की भी थीं, जो उसे मनमानी करने से रोकती थीं। राजा अनुचित आचरण करने से गद्दी से उतार भी दिया जाता था। उसे सही तरीके से प्रजा की रक्षा की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी और वचन से विमुख हो जाने पर उसे राजा बने रहने का अधिकार न था। वह लड़ाई और आक्रमण के समय सेना का संचालन करता था और शान्ति के समय न्याय और यज्ञ। पुरोहित लड़ाइयों में जीत के लिए पूजा-प्रार्थना करता था, यज्ञ करता था। उसके बदले वह दक्षिणा पाता था, जैसे राजा प्रजा की रक्षा के बदले कर और भेंट।

परिवार का जीवन सुखमय था। विवाह का रिवाज़ चल जाने से कई प्रकार के सम्बन्धी बन गए थे। आमतौर से एक आदमी एक ही औरत से व्याह करता था, पर राजा, धनीमानी और पुरोहित-ऋषि अनेक व्याह भी एक साथ कर

करने का अधिकार था। वह लड़ाइयों में भी जाती थी। अनेक बार उनकी वीरता की ऋग्वेद में बड़ी तारीफ हुई है। अनेक ऋषि औरतें भी थीं।

साधारण जनता खेती और पशु-पालन करती थी।

जनता पशु पाला करती थी

कुछ लोग लड़ने-भिड़ने का काम करते थे। उन दिनों लड़ाइयाँ अक्सर होती थीं, जिससे विशेषकर बाहर से आए
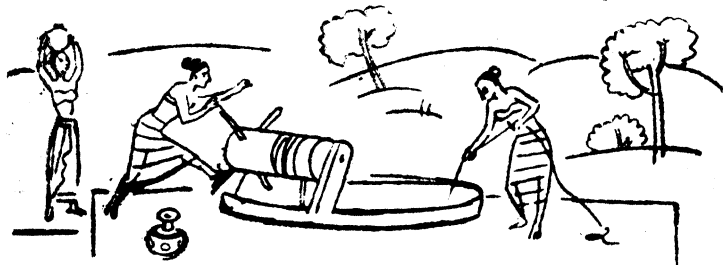
औरतें पानी भरने आदि का काम करती थीं

आर्यों को हमेशा कमर कसे रहना होता था। अधिकतर व्यापार चीज़ों की अदला-बदली से होता था। गाय कीमत

के रूप में जब तब ली-दी जाती थी। गाँवों में बढ़ई, लुहार, सुनार, नाई, चमार, सभी थे। सीने-पिरोने, चटाई-कपड़ा बुनने, गाय दुहने, पानी आदि भरने का काम अधिकतर औरतें करती थीं। पर कोई पेशा छोटा नहीं माना जाता था। श्रम की खासी क़दर थी।

कपड़ों में सुनहरा काम भी होता था

कपड़ा अधिकतर ऊन का बनता था। नीचे धोती या सलवार, ऊपर एक वस्त्र और उसके ऊपर शाल। धनियों के कपड़ों में सुनहरा काम भी बना होता था। नाचने वाली औरतें पेशबाज़ पहनती थीं। नर-नारी दोनों कानों में बाली, हाथ-पैरों में कड़े, गले में हार आदि पहनते थे। लोग बालों में तेल डालते और कंघा करते थे।

नारियाँ अपने बालों की चोटियाँ गूँथती थीं। कुछ मर्द सिर और दाढ़ी मुंडा लेते थे, अनेक बाल और दाढ़ी रखते थे।

आर्य अन्न, दूध, दही, घी, मांस सभी खाते थे।

पर धीरे-धीरे गाय राष्ट्र का धन समझी जाने लगी,

नारियां बालों की चोटियां गूंथती थीं

अवध्य और पूजा की चीज़ भी मानी जाने लगी। लोग

आर्य गाने-बजाने में निपुण थे

सोम और शराब दोनों पीते थे। सोम एक प्रकार की लता थी, जिसका रस निकाल लिया जाता था। आर्य गाने-बजाने में निपुण थे, त्योहारों पर खूब उत्सव मनाते थे। उनका एक 'समन' नाम का मेला होता था, जहाँ नाच-रंग खूब जमता था, रथों और घोड़ों की दौड़ होती थी, युवक और युवती अनेक बार वहीं विवाह के लिए साथी ढूंढ़ लेते थे। जुआ भी खूब खेला जाता था। लोग अपनी बीवी तक जुए में दाँव पर लगा सकते थे।

वेश्या और गुलाम भी होते थे

समाज में वेश्या और गुलाम भी थे। गुलाम ज्यादातर वे पुराने जीते हुए दुश्मन ही थे, जिन्हें आर्य 'दास' या 'दस्यु' कहते थे। उनकी जबान न समझ सकने के कारण वे उन्हें 'कड़ीबोली वाले' कहते थे। उनको उन्होंने अनेक बार लिंगपूजक, यज्ञ न करनेवाले, काले, अनासा—चिपटी नाक वाले भी कहा।

आर्यों का धर्म प्रकृतिवादी था। पृथ्वी, सोम, अग्नि, इन्द्र, वायु, मरुत, पर्जन्य, वरुण, आकाश, सूर्य आदि देवताओं को वे पूजते थे। अपनी प्रार्थना में ऋचाओं का गान करते थे। ऋग्वेद में उषा-सम्बन्धी ऋचाएँ गज़ब की ताज़गी लिए हुए हैं। अपने यज्ञों में लोग मांस के अतिरिक्त दूध, घी, अन्न आदि भी चढ़ाते थे।

आर्य कहाँ से आए, यह कहना तो कठिन है, परन्तु यह भी सही है कि शीघ्र वे यहां की जनता में इतने घुलमिल गए कि दोनों में भेद न रहा। पहले इंच-इंच जमीन के लिए जमकर लड़ाई हुई, पर बाद में दोनों मिलकर एक हो गए। कुछ ही काल बाद आपस में शादी-व्याह के कारण कई अंशों में रंग का भेद भी मिट चला और दोनों ने मिलकर भारत में जिस संस्कृति का निर्माण किया, वह अत्यन्त शक्तिशाली थी। वही अगली भारतीय संस्कृति की पहली मजबूत नींव हुई। जिसपर बाद में आर्य-सभ्यता के पाए रखे गए। घुलमिल जाने के कारण वही बाद की सभ्यता आर्यों और द्रविड़ों की सगी बपौती हुई। वही आज हमारी भी विरासत है।

: ५ :

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनमें से पहले तीन का बहुत काल तक इस देश में बड़ा मान रहा। उनका नाम भी आमतौर से उनकी संख्या की वजह से 'त्रयी' पड़ गया। इनमें यजुर्वेद और सामवेद तो ऋग्वेद के ही सूक्तों से बने हैं। इनका सम्बन्ध अधिकतर यज्ञों से है। अथर्ववेद शायद कुछ पीछे बना। उसमें भी ऋग्वेद के अनेक मन्त्र हैं। इसमें पहले-पहले पुराने और नए भारतीयों की मिली-जुली संस्कृति के बीज पड़े।

इन्हीं के साथ तीन प्रकार के और ग्रंथ जुड़े हैं—ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। ब्राह्मण वेद के मन्त्रों का अर्थ स्पष्ट करते हैं। इस रूप में वे पुरोहित के कर्मकाण्ड, यज्ञ, आदि की कुंजी हैं। उनके नाम से भी पुरोहित ब्राह्मणों से उनका सम्बन्ध प्रकट होता है। उन ग्रन्थों में ऐतरेय और शतपथ मुख्य हैं। 'आरण्यक' ब्राह्मणों के ही पिछले हिस्से हैं। उनका अर्थ जंगल के एकान्त में समझा जाता है। 'उपनिषद्' इस प्रकार के ग्रन्थों में सबसे अधिक महत्त्व के हैं। उनमें मुख्य छान्दोग्य और वृहदारण्यक हैं। उपनिषद् वेदों के कर्मकाण्ड और ब्राह्मणों के प्रायः विरोधी हैं, विद्रोही।

उनके नेता, ब्राह्मण नहीं क्षत्रिय हैं। जिस शक्ति के लिए बेदों में ब्राह्मण-क्षत्रियों में वैर छिड़ा था, उसका विकास उपनिषदों में हुआ।

इन ग्रन्थों का समय आज से कोई ढाई हजार वर्ष पहले तक चला जाता है। इनसे पता चलता है कि आर्य तब पूरब में बिहार तक और दक्खिन में विन्ध्याचल पहाड़ तक फैल गए थे। वहाँ उनके बड़े-बड़े राज्य, बड़े-बड़े नगर खड़े हो गए थे—काम्पिल्य, आसन्दीवन्त, कौशाम्बी, काशी। उस काल के सबसे बड़े राजकुल कुरु और पंचाल थे। ये सरस्वती के किनारे पानीपत के आसपास बसे थे। पंचाल गंगा, जमुना के दोआब में। इन बड़े-बड़े राज्यों को जनपद-राज्य कहते थे। राजा छोटे, मझोले, बड़े कई प्रकार के थे। जो राजाधिराज, सम्राट्, चक्रवर्ती आदि कहलाते थे। ये नाम इनको जीतों और कई तरह के यज्ञों से इन्हें मिले थे।

राजा अब तक कुलागत हो गया था। क्षत्रिय ही राजा होता था और वह अनेक सलाहकारों की सलाह से राज्य करता था। धर्म के मुताबिक हुकूमत करना उसका कर्त्तव्य माना जाता था। धर्म या कानून के बनाने वाले ऋषि वगैरह थे। परन्तु प्राचीन काल की समिति और सभा अब नहीं थी; जिससे राजा मनमानी भी करने लगा।

आज की जात-पांत का आरम्भ तब का हो गया था, पर न उसका यह रूप ही तब था, न इतनी संख्या ही थी।

पहले शायद उसका भेद वर्ण या रंग से हुआ, जिससे उसका नाम भी 'वर्ण' पड़ा। यह शुरू में आर्य और दास (या दास्य) का ही अन्तर करता होगा, पर धीरे-धीरे इसके कई खण्ड बन गए। ऋग्वेद में एक सूत्र है जिसका नाम 'पुरुष-सूक्त' है। उसमें ब्राह्मण की उत्पत्ति 'पुरुष' के मुँह से, क्षत्रिय की उसकी बाहों से, वैश्य की उसकी रानों से और शूद्र की पैरों से कही गई है। जिससे जान पड़ता है कि तभी से किसी न किसी मात्रा में चारों वर्णों (जातियों) की नींव पड़ गई थी। कम-से-कम पुरोहित तो पुराने थे ही और जिस तरह ब्राह्मण दूसरों को उस पेशे में नहीं घुसने देते थे, क्षत्रिय भी राजकाज, लड़ाई वगैरह में अपना एकाधिकार मानने लगे थे। साधारण जन 'विश' कहलाते थे। मगर उनमें अभी शादी-व्याह, खान-पान होते थे। पेशे भी आसानी से बदले जा सकते थे। पर उपनिषद्-काल या पिछले वैदिक युग तक पहुँचते-पहुँचते सब अलग-अलग हो गए। वर्ण कुलागत हो गए, वैसे उनके पेशे भी। ब्राह्मण का कर्त्तव्य पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ-कर्म-दक्षिणा लेना माना गया। क्षत्रिय का राज करना, पढ़ना, युद्ध करना हुआ। इसी प्रकार वैश्य का खेती, पशुपालन और व्यापार हुआ और शूद्र का इन तीनों की सेवा। विवाह अब भी जब तब भिन्न वर्णों में हो जाया करते थे। पर ब्राह्मण अपनी पुरोहिताई में किसी को घुसने नहीं देते थे। दोनों में काफी द्वन्द्व चला। क्षत्रिय ब्राह्मणों के

कर्मकांड के खिलाफ हो गए। ज्ञान को उन्होंने यज्ञ से ऊपर माना। आत्मा और ब्रह्म का रहस्य बताया। उनके दरबार अब ज्ञान के मरकज बन गए। वे अब ब्राह्मणों को भी पढ़ाने लगे। उपनिषद्-काल के नेता पंजाब में अश्वपति, पंचाल में प्रवहण जैवलि, काशी में अजातशत्रु और विदेह (मिथिला) में जनक हुए। चारों क्षत्रिय थे। अश्वपति ने श्वेतकेतु के पिता महर्षि आरुणि को पढ़ाया और जनक ने महर्षि याज्ञवल्क्य को। जनक की सभा तो ज्ञान का अखाड़ा मानी जाती थी। गार्गी, मैत्रेयी-सी महिलाएँ भी वहाँ की बहसों में हिस्सा लेती थीं और वैदिक-ऋषियों की तरह ब्रह्मवादिनी कहलाती थीं। परन्तु आमतौर से नारियों और शूद्रों का स्थान नीचा होता जा रहा था।

ब्राह्मण-क्षत्रिय का झगड़ा कहीं-कहीं पुरोहित-राजा के झगड़े का रूप भी लेने लगा था। परीक्षित के बेटे जनमेजय और उसके पुरोहित तुरकावषेय के बीच इस तरह का झगड़ा था। तुरकावषेय ने जनमेजय का पुरोहित होते हुए भी उसका यज्ञ भ्रष्ट कर दिया। इस पर राजा के तीनों भाइयों—भीमसेन, उग्रसेन और ऋतुसेन ने हजारों ब्राह्मणों को मार डाला, जिससे उन्हें प्रायश्चित्त करना पड़ा।

कर्मकांड में रुद्र और विष्णु प्रधान देवता माने गए। इन्द्र की महिमा घट गई थी। रुद्र का दूसरा रूप शिव स्थापित हुआ। परन्तु उपनिषदों ने इन सबको छोड़कर

ब्रह्म की महिमा का बखान किया। आत्मा-परमात्मा का रूप रखा। हम कहाँ से आये ? कहाँ जाएँगे ? यह दीखनेवाला
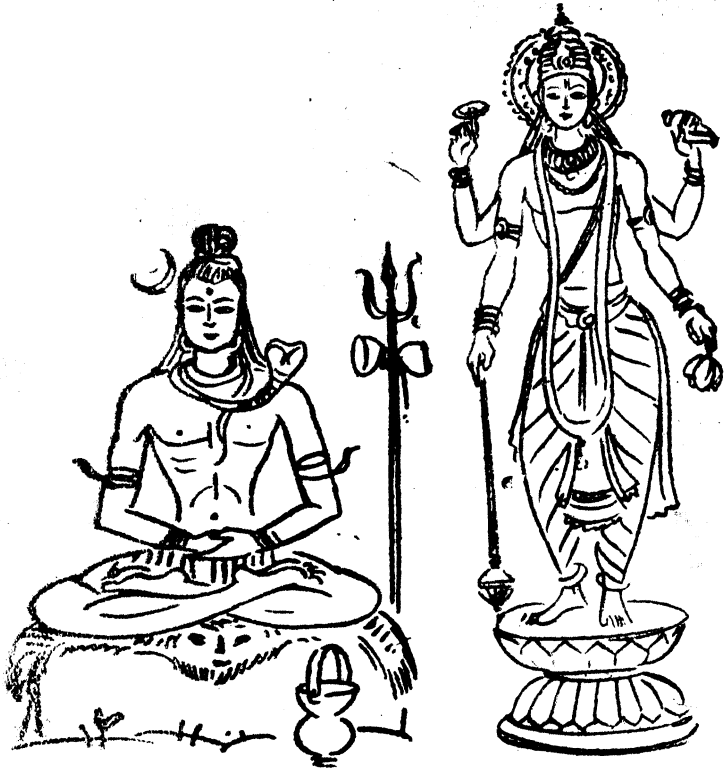
संसार क्या है ? ब्रह्म क्या है ? आदि विचारकों के सोचने-विचारने के विषय हुए। दर्शन का रूप अब बनने लग गया। मगर ब्राह्मण-क्षत्रियों में झगड़ा चल ही रहा था। इससे

ब्राह्मणों के यज्ञकर्म हटाकर क्षत्रियों ने ब्रह्मदर्शन में ब्रह्म और ईश्वर को ही नहीं माना, उसका अस्तित्व ही अस्वीकार कर दिया। दर्शन सभी ब्राह्मणों के लिखे थे, प्रायः सभी शुरू में नास्तिक थे। दर्शन छः हैं; कपिल का सांख्य, पंतजलि का योग, गौतम का न्याय, कणाद का वैशेषिक, जैमिनि का पूर्व-मीमांसा और व्यास का उत्तर-मीमांसा। उन्होंने वेदों के सही अध्ययन और आसानी के लिए भी छः विषय तैयार किए, जिन्हें वेदांग कहा। वेदांग ये थे—व्याकरण, शिक्षा (उच्चारण), कल्प (कर्मकाण्ड), निरुक्त (शब्दार्थ जिससे बाद में कोष बने), छन्द (पद्य के नियम) और ज्योतिष। इन विषयों पर बाद तक सूत्र-रूप में ग्रंथ लिखे जाते रहे। सूत्र कहते हैं—सूत या धागे को जिससे थोड़े में ही फैले जाल का पता चल जाय। यह रूप इतना मांजा गया कि कहते हैं, सूत्रकार को एक मात्रा बचा लेने से उतना सुख मिलता था, जितना कि पुत्र उत्पन्न होने से। तभी शायद लिखने का भी आरम्भ हुआ। आज की हमारे देश की प्रायः सभी लिपियाँ ब्राह्मी से निकली हैं। पर ब्राह्मी में लिखा लेख ईसा पूर्व छठी सदी से पहले का नहीं मिलता और चूँकि मोहनजोदड़ो की लिखावट से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, कुछ विद्वानों की राय है, कि शायद ब्राह्मी फ़िनीशी या असीरी कीलनुमा अक्षरों से निकली, सत्य क्या है, अभी नहीं कहा जा सकता।

इस काल के पेशों पर भी यहाँ एक नज़र डाल लेना उचित होगा—प्रधान पेशा तो पहले की ही तरह कृषि था। व्यापार का काफी विस्तार हो चुका था। सोना-चाँदी, शीशा, तांबा, टिन, कांसा, पीतल आदि के अतिरिक्त लोहा भी अब वाणिज्य में प्रयुक्त होता है। सूत, शिकारी, रथकार, कुम्हार, जुलाहे, कसाई, लुहार, सुनार, धुनके, गायक, महावत, वैद्य आदि अनेक पेशों के लोगों का उल्लेख उस काल की पुस्तकों में हुआ है।
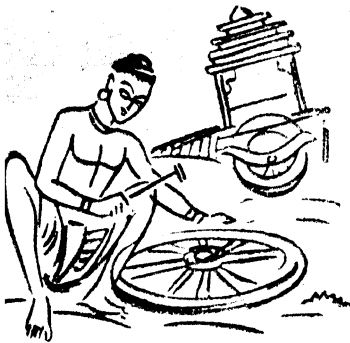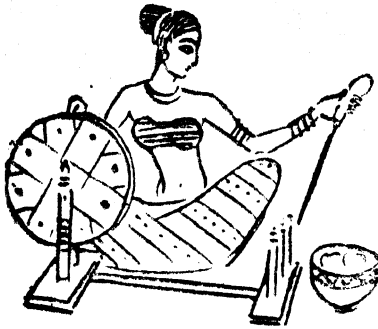
सूत्रकाल के ग्रन्थों में पाणिनि का व्याकरण 'अष्टाध्यायी' अत्यन्त प्रसिद्ध है। व्याकरण लिखने वाले पहले भी हुए थे; पीछे भी हुए, पर पाणिनि का-सा वैय्याकरण कोई नहीं हुआ। उसने संस्कृत भाषा का रूप निश्चित कर दिया। प्राकृत जन-साधारण की बोली थी और संस्कार यानी शुद्ध की हुई भाषा संकृत। संस्कृत में ही धर्मग्रंथ थे, पुरोहित उसी में पूजा करते थे, राजा राज-कार्य करते थे। उसका रूप पाणिनि ने सदा के लिए निश्चित कर दिया।

कल्प-सूत्र तीन प्रकार के हैं। श्रौत-सूत्र, गृह्य-सूत्र और धर्म-सूत्र। श्रौत-सूत्र यज्ञों से सम्बन्ध रखते हैं और गृह्य-सूत्र अठारहों संस्कारों से। ये संस्कार व्यक्ति के जीवन को जन्म के पहले से लेकर मृत्यु के बाद तक संगठित करते हैं। इनमें प्रधान जनेउ (उपनयन), विवाह और अंत्येष्ठि (श्राद्ध) थे। इन संस्कारों से ही ऊपर के तीन वर्ण 'द्विज' यानी दोबारा जन्मे हुए माने जाते हैं। धर्म-सूत्र उस काल के सामाजिक कानून उपस्थित करते हैं। उनमें भी व्यक्ति के सामाजिक कर्तव्यों का वर्णन है। उनमें प्रधान गौतम और आपस्तम्ब के धर्म-सूत्र हैं। इनमें पहला आज से ढाई हजार साल पहले लिखा गया, दूसरा उससे करीब सौ साल बाद। सूत्रों के काल तक वर्ण तो पूरी तरह स्थापित हो ही गए थे, उनके खान-पान, शादी-ब्याह-सम्बन्धी नियम-कानून भी बन ही गए थे, आश्रमों की भी तब पूरी-

पूरी व्यवस्था हुई : श्राश्रम चार माने गए—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ श्रौर संन्यास। श्रादमी के जीवन के चार हिस्से

इस प्रकार हो गए। पहले वह ब्रह्मचारी रहकर विद्या पढ़ता, फिर विवाह कर गृहस्थ बनता। श्रौर जीवन के तीसरे पहर घर छोड़, पत्नी को लेकर तप श्रादि के लिए जंगल चला जाता श्रौर श्रन्त में संन्यास लेकर सब कुछ छोड़ कर उपदेश करता फिरता। श्रब वर्णाश्रम-धर्म समाज का संचालन करने लगा। सबके श्रपने-श्रपने नियम बन गए, जिससे गिरना बड़ा भारी सामाजिक श्रपराध माना जाने लगा।

वर्णाश्रम-धर्म को पुष्टि में रामायण-महाभारत भी लिख डाले गए जो श्रादर्श के रूप में देवताश्रों श्रौर श्रवतारों का चरित्र लेकर हमारे सामने श्राए। उनकी संस्कृति भी राज-संस्कृति थी, परन्तु राजा न्याय करते समय न केवल मंत्री

की राय लेता था, बल्कि कुल, जाति, श्रेणी, पूगों आदि के नियमों आदि का ध्यान रखता था। श्रेणो शिल्पियों, व्यापारियों आदि के संघ थे। पूग भी उसी प्रकार जातीय सभा थी। इनका उल्लेख धर्मसूत्रों में भी मिलता है। महाभारत में गणों और संघों का भी बखान है। गण जनता के प्रतिनिधियों के राज को कहते थे। संघ कई गणों के मिलने वाले राज्य को। अब तक समाज के भीतर, कुल के भीतर, सबके आपसी सम्बन्ध निश्चित हो चुके थे। पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, सभी के। रामायण-महाभारत ने उसी का विशेष स्वरूप रखा। समाज को अब नियमबद्ध रूप मिला। सब को अपना-अपना कर्त्तव्य और अपनी-अपनी सीमाएँ मालूम थीं।

इस स्थिति का और भी खुला रूप स्मृतियों में मिला। स्मृति धर्मशास्त्र का दूसरा नाम है। स्मृति माने वह जो याद रह गया हो। याद सुने हुए (श्रुति) ज्ञान की, वेद की। वेद सुनकर ही याद रखे गए थे, लिखने की चलन अभी नहीं रही थी। मतलब कि धर्मशास्त्र वेदों के अनुकूल ही राह दिखाते थे। धर्मशस्त्रों में और भी विस्तार के साथ वर्णाश्रम-धर्म बताया गया है। उसमें अपराधों का दण्ड भी बताया गया है। वे कानूनी किताबें हैं, जिनमें कर्त्तव्य, अधिकार और दण्ड तीनों बताए गए हैं। नारी को पूजनीया तो उसमें बताया गया है, पर सचमुच उन्हें कोई अधिकार नहीं दिए गए हैं। उनको गवाही देने का, स्वतन्त्र रूप में संपत्ति

का हक़ नहीं है। वे केवल स्त्री-धन पा सकती हैं। आठ से बारह वर्ष तक ही उनका विवाह कर देने पर ज़ोर दिया गया है।

धर्मसूत्रों और धर्मशास्त्रों से समाज की बड़ी जकड़ी हुई स्थिति मालूम होती है। इसका कारण यह है कि तब भारत का सामना अनेक विजातियों से हुआ था। सीमा पर हमले हो रहे थे, ग्रीक और शक भीतर भी घुस आए थे,। काफी पहले ईरानियों ने दीर्घकाल के लिए पंजाब और सिन्ध पर कब्जा कर लिया था। साथ ही बौद्ध, जैन और भागवत धर्मों ने जो वर्णाश्रम धर्म पर हमला कर सबकी बराबरी की बात कही थी, उससे ब्राह्मण भयभीत हो गए थे। उन्होंने इसी से अनेक नियम-उपनियम बनाकर समाज और व्यक्ति को, वर्णाश्रम धर्म को पवित्र और कायम रखने के लिए मजबूर कर दिया। प्रधान धर्मशास्त्र मनु, विष्णु, याज्ञवल्क्य और नारद के थे।

: ६ :

आज से करीब ढाई हज़ार वर्ष पहले संसार भर में धार्मिक हवा बही थी। चीन में, ईरान में, हिन्दुस्तान में। उपनिषदों का ज्ञान तो फैल ही रहा था, दूसरे बहुतेरे सत्य के खोजी भी घर-द्वार छोड़ लोक-कल्याण की तदबीर ढूंढ़ने निकल पड़े थे। इनमें विशेष प्रसिद्ध महावीर और बुद्ध हुए।

दोनों क्षत्रिय थे, दोनों वेद विरोधी, संस्कृत-विरोधी, वर्णाश्रम धर्म-विरोधी और ब्राह्मण विरोधी थे। दोनों उपनिषदों की परम्परा में यज्ञों के विरोधी थे। दोनों ने घर छोड़ तप साधा और अपने-अपने तरीके से सत्य की खोजकर उसका

प्रचार किया। दोनों ने अहिंसा और दया को अपने उपदेशों में ऊँचा स्थान दिया और अपने-अपने संघों में सभी जाति के लोगों को बराबर का स्थान दिया। संस्कृत ब्राह्मणों का गढ़ बन गई थी। उसे छोड़ दोनों ने लोगों में जन-बोलियों के ज़रिये अपने संदेश सुनाए, जिससे वे उनमें आसानी से फैल गए। दोनों क्योंकि पंचायती राज्यों से आए थे, उनमें मनुष्य-मनुष्य के लिए समता का विचार था।

महावीर ने तप को ऊँचा स्थान दिया, उसी प्रकार अहिंसा को भी। बुद्ध ने तप और भोग के बीच का मध्यम मार्ग सुझाया। महावीर का धर्म कठिन होने से देश के बाहर न जा सका। आज भी देश में उनके पीछे चलने वाले जैनियों की संख्या अधिक नहीं है, उसका प्रचार कुछ धनी वैश्यों में है। बुद्ध का धर्म गृहस्थ का त्यागमय साधारण धर्म था, इससे घर-बाहर सर्वत्र फैला। संसार के कम धर्मों के इतने अनुयायी हैं, जितने बौद्ध धर्म के। उनके उपदेशों में सच्चे, दयावान् जीवन की ओर आग्रह था। उनसे ब्राह्मण धर्म को बड़ा आघात पहुँचा। धर्मसूत्रों की सारी इमारत ऊँच-नीच पर कायम थी, उस पर बुद्ध ने बड़ा आघात किया। ब्राह्मणों के यज्ञ, वेद, भाषा, समाज-संगठन सभी की जड़ें हिल गईं।

उन्हीं दिनों भागवत धर्म का भी काफी प्रचार हुआ। विष्णु के अवतारों की पूजा शुरू हुई। वासुदेव, कृष्ण, अर्जुन, राम, आदि भगवान् के रूप में पूजे जाने लगे थे।

रामायण और महाभारत उसी पूजा के परिणाम थे। एक में राम की महिमा गाई गई, दूसरे में कृष्ण की। भागवत धर्म

वैष्णव धर्म का ही दूसरा नाम था। इस धर्म में भी जैनों-बौद्धों की तरह हर जाति के लोगों को इजाजत थी।

इन समतावादी धर्मों के प्रचार का नतीजा यह हुआ कि जनता का निचला स्तर, नीचे की जातियां, ऊपर उठीं और एक बार मगध के क्षत्रियों की गद्दी पर शूद्र राजा नन्द बैठ गया। ब्राह्मण-क्षत्रियों की आपसी लड़ाई चल रही थी। क्षत्रिय, उपनिषद्, जैन, भागवत धर्मों ने ब्राह्मणों की बड़ी क्षति की थी, इससे उन्होंने उठती हुई नई ताकत—शूद्रों की सहायता ली। नन्द के दोनों मन्त्री ब्राह्मण थे और

नन्द ने जो सारे क्षत्रिय राजाओं का नाश कर भारत का पहला मगध-साम्राज्य कायम किया तो उसमें ब्राह्मण मन्त्रियों का भी साझा था। पर जल्दी ही ऐसा लगा कि उससे वर्ण-धर्म का भी कुछ कम नुकसान नहीं होगा। इससे उस उठती हुई नई शक्ति को रोकने के लिए ब्राह्मण चाणक्य ने क्षत्रिय चन्द्रगुप्त से साझा कर नन्द को उखाड़ फेंका और शूद्रों

चन्द्रगुप्त

के खिलाफ अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में अनेक कानून बनाए। उन्हीं दिनों सिकन्दर हिन्दुस्तान पर हमला करके लौटा था। जब चन्द्रगुप्त मौर्य जैन हो गया तो वह साझे-दारी खत्म हो गई।

उधर बौद्ध अशोक ने यज्ञों को बिल्कुल बन्द करवा दिया और अहिंसा और दया की गज़ब की हवा बहाई। अपने

अशोक

राज्य में सभी धर्मवालों को बसने का आदेश दिया। लड़ाई के खिलाफ पहली आवाज़ उठाई। सिकन्दर के झंडे के नीचे ग्रीकों ने हिन्दुस्तान पर हमला किया था, उसने उसका अजब

बौद्ध-दूत

बदला दिया। उसने ग्रीक राजाओं के राज्य में इन्सान और हैवान दोनों के लिए दवा बाँटने का इन्तज़ाम किया। भारत की संस्कृति की यह गज़ब की चोट थी, शत्रु को प्यार से जीतने की। उसने बौद्ध धर्म का देश के बाहर भी अपने दूत भेजकर प्रचार किया।

पर निश्चय उससे ब्राह्मण-धर्म की हानि हुई। उसका पोता सम्प्रति, ज़बर्दस्ती गुजरात के लोगों को जैन बनाने लगा। इसी समय आमू दरिया के ग्रीकों ने भारत पर हमला किया और घुसते हुए मगध की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) तक चले गए। फिर मौर्यों के आखिरी राजा बृहद्रथ को उसके पुरोहित-सेनापति पुष्यमित्र ने मारकर ब्राह्मण-साम्राज्य कायम किया। यह उसी ब्राह्मण-क्षत्रिय लड़ाई का नतीजा था, जिसके सिलसिले में वसिष्ठ, परशुराम, तुका विषेय हुए थे। इसी काल महर्षि पतंजलि अपना योगदर्शन और पाणिनि

की अष्टाध्यायी पर अपना 'महाभाष्य' लिख रहे थे। पुष्यमित्र की विजय उसकी सलाह का फल था। पुष्यमित्र ने ब्राह्मण-धर्म को फिर से फैलाया। यज्ञ जारी किए, संस्कृत को राजभाषा बनाया, मनुस्मृति लिखवाकर वर्णाश्रम धर्म की फिर से प्रतिष्ठा की। कुछ ही काल पहले भगवद्गीता का उपनिषद् लिखा गया था जो कृष्ण को उन सब देवों का देव बना चुका था। मनुस्मृति ने ब्राह्मणों को पृथ्वी का देवता माना है।

कला की उन्नति इस काल में गज़ब की हुई थी। जब-जब संस्कृतियां घुली-मिलीं, तब-तब जीवन ऊँचा उठा। ईरानियों का राज्य बहुत काल तक पंजाब और सिन्ध पर रहा था। अशोक के कुछ ही काल पहले तक ईरान मूर्तियां बनाने में संसार में लासानी रहा था—दर्पण की-सी चमकती सांडों वा शेरों की मूर्तियां, जिनकी छाप हमारी अशोक-लाट की मूरतों पर, काफ़ी हद तक उतर आई। दारा की ही भांति उसने भी अपने लेख चट्टानों पर खुदवाए, लाटों पर भी। फर्क इतना और था कि जहाँ दारा ने खूनी कहानी उन पर लिखवाई थी, अशोक ने प्रेम और अहिंसा के संदेश खुदवाये। अशोक की लाट की पालिश गज़ब की है जैसे ताँबे की हो।

वैसे ही कला का विकास शुंगों के राज में भी खूब हुआ। उस काल चारों ओर भारत में ब्राह्मणों का राज्य था; उत्तर में पुष्यमित्र शुंग का, दक्खिन में आंध्र-सातवाहनों का।

दोनों ने कला के क्षेत्र को और बढ़ाया। आंध्रों ने नासिक में गुफायें खुदवाईं, शुंगों के समय भरहुत और सांची के अद्भुत बौद्ध स्तूप बने, जिनपर सुन्दर कढ़ाई का काम हुआ। अभिराम मूरतें खड़ी हुईं, मनोहर और ऊँचे स्तंभ बने। मिट्टी के खिलौने भी तब सुन्दर से सुन्दर बने। वह काल ईसा से पहले दूसरी-पहली सदी का था।

बौद्ध-स्तूप

पुष्यमित्र के घराने के राज्य के समय ही पंजाब पर ग्रीकों ने अधिकार कर लिया था, वे राज्य करने लगे थे। प्रायः दो सौ साल तक वे वहाँ राज्य करते रहे। उन्होंने वहाँ अपनी संस्कृति फैलाई, ग्रीक नाटक खेले, ग्रीक ज्योतिष का प्रचार किया, मूर्ति-कला में एक नया तरीका चलाया, जिसे गांधार-शैली कहते
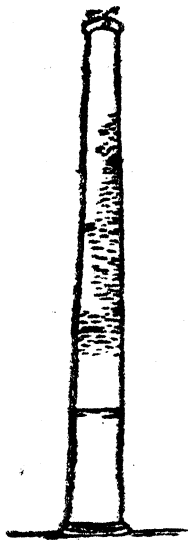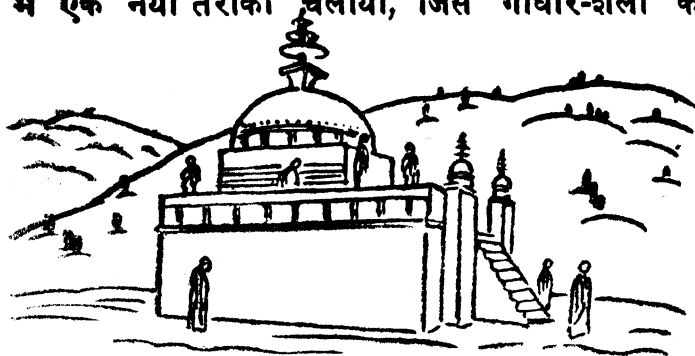
बुद्ध की मूर्ति का मन्दिर

हैं। इसी शैली में बुद्ध की पहली मूर्ति बनी। गान्धार की राजधानी तब तक्षशिला थी। तक्षशिला बड़ी प्राचीन नगरी थी, जहां भारत का पहला विश्वविद्यालय कायम हुआ था। वहां का अस्पताल संसार-प्रसिद्ध था और इलाज के लिए दूर-दूर से लोग आते थे। पाणिनि और चाणक्य वहीं के पढ़े थे। अब वहाँ के राजा ग्रीक थे।

उन्हीं दिनों शकों के हमले शुरू हुए जो पाटलिपुत्र तक पहुंच गए। उन्होंने पाँच-पांच जगह भारत में अपने केन्द्र बनाए और भारत का ज्योतिष उनके बढ़ावे से बहुत फूला-फला। उस ज्योतिष का केन्द्र उज्जैन था। उन्होंने ही भारत में सूर्य की पूजा प्रचलित की। भारत की सबसे पुरानी, पहली सदी ईसवी की पहली सूर्य की मूर्ति जो मथुरा के अजायबघर में रखी है, सलवार, अचकन और घुटनों तक जूते पहने हुई है, ठीक शकों या कुषाणों की तरह। सूर्य की पूजा के लिए ही शकों ने शकद्वीपी ब्राह्मणों को मध्य एशिया से बुलाकर इस देश में बसाया। हमने कुछ दिनों बाद शकों को पचा लिया।

उनके बाद उत्तर-पच्छिमी चीन की रहने वाली जाति ने भारत पर हमला किया। उन्होंने भी हमारी कला की बड़ी उन्नति की। भारतीय मूर्तियों की प्रसिद्ध कुषाण-कला का नाम उन्हीं के नाम पर पड़ा है। मथुरा और लखनऊ के संग्रहालय उस काल की खूबसूरत मूरतों से भरे हैं। कुषाणों

का राजा कनिष्क बौद्ध हो गया था। उसने अपने समय के सारे विख्यात विद्वानों की सभा की। उसकी सभा में अश्वघोष-से कवि, सुपार्श्व और वसुमित्र-से दार्शनिक, चरक-से वैद्य और नागार्जुन-से भक्त हुए। अश्वघोष से तो महाकवि कालिदास ने बहुत कुछ सीखा और नागार्जुन ने बौद्धों का प्रसिद्ध सम्प्रदाय महायान चलाया।

नागार्जुन

: ७ :

कनिष्क के करीब दो सौ साल बाद नागों और गुप्तों ने उसके वारिसों से हिन्दुस्तान का राज्य छीन लिया। नागों ने तो जब-जब विदेशियों को हराया, तब-तब अश्वमेध किया। उन्होंने काशी में गंगा के घाट पर दस अश्वमेध किये, जिससे उस घाट का नाम ही दशाश्वमेध पड़ गया। गुप्तों का युग इस देश में बड़े गौरव का माना जाता है। उनके राज्य के विस्तार में, व्यापार में, ज्ञान, साहित्य और कला में इतनी उन्नति हुई कि उस काल को 'सोने का युग' कहते हैं।

गुप्त और नाग राजा

गुप्त भारतीय संस्कृति की दुपहरी का बोध कराते हैं। सब जो प्राचीन था, घुल-मिल कर पक गया है। द्रविड़, आर्य,
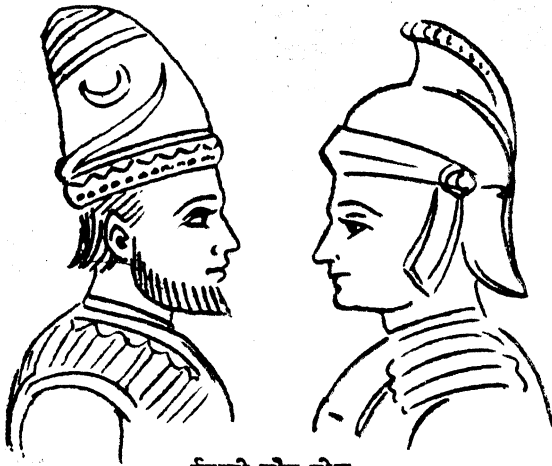
ईरानी और ग्रीक

ईरानी, ग्रीक, शक, कुषाण सभी भारतीय संस्कृति में अपना सुन्दरतम योग दे चुके हैं। वह सब सज-निखरकर हिन्दू या भारतीय होकर इस काल में सामने आते हैं। हिन्दू शब्द का उचित प्रयोग इसी काल की संस्कृति के साथ होना उचित है। अब तक पुराण बन चुके हैं, उनके देवता-देवी—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—अपने असंख्य रूपों में प्रकट हो चुके हैं। मन्दिर उनकी मूरतों से भरे हैं। घर की दीवारें उनके चित्रों से खिचीं हैं। दसों अवतारों की पूजा होती है, अब बुद्ध की प्रतिमा भी है। बौद्धों-ब्राह्मणों में कोई झगड़ा नहीं। राजा परम भागवत है, पर रक्षक दोनों का समान रूप से है। एक अजब समन्वय का काल है। बराबर के

शत्रु ब्राह्मण-क्षत्रिय भी एक साथ हैं। गरज कि समन्वित हिन्दू संस्कृति उस के लिये सार्थक नाम है।

चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों को परास्त कर 'शकारि' नाम धारण किया है। इस जीत से मालवा, गुजरात और काठियावाड़ी साम्राज्य के मिल जाने से हिन्दुस्तान पच्छिमी और पूरबी दुनिया के व्यापार का केन्द्र बन गया है। उसके आंगन में धारासार धन बरस रहा है।

साहित्य के मैदान में संस्कृत खूब फलती-फूलती है। बौद्ध तक संस्कृत में लिखते हैं। वसुबन्धु और दिगनाग बौद्धदर्शन उसी भाषा में तैयार करते हैं। समुद्रगुप्त स्वयं कवि है, गायक है। उससे बड़ा उसका राजकवि हरिषेण है। पर उसी काल का विष्णुपुराण समुद्रगुप्त की साम्राज्य-वादी विजयों पर धिक्कारता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की सभा में 'नवरत्न' हैं। वे कौन हैं, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर उनमें सबसे चमकदार निश्चय ही संस्कृत-साहित्य का सबसे बड़ा कवि कालिदास है। उसने अमरकाव्य,

कालिदास

मेघदूत, कुमारसम्भव, रघुवंश और ऋतुसंहार लिखे। अद्भुत नाटक शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय लिखे। अमरसिंह ने अपना अमरकोश लिखा, विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस और देवीचन्द्रगुप्त। धन्वन्तरि भी शायद तभी हुआ। पुराण भी तभी तैयार हुए। याज्ञवल्क्य-स्मृति लिखी गई और मनुस्मृति फिर से सम्हाल ली गई। आर्यभट्ट ने जमीन की गोलाई नापी और बराहमिहिर ने ज्योतिष के देशी-विदेशी सिद्धान्तों को युग की नीति के मुताबिक इकट्ठा किया। ब्रह्मगुप्त ने गणित में नाम किया।

कला में तो उस युग ने जो कुछ किया वह न पहले न पीछे, कभी भी सम्भव न हो सका। देवगढ़ और भीतरगांव के ईंट के मन्दिर तो अचरज के नमूने हैं ही, अनेक गुफा, मन्दिर बनाकर भी उस युग ने अपनी शिल्प-कला का परिचय दिया। मूर्तिकला तो न केवल संख्या में इतनी संपन्न हुई बल्कि रूप में भी अद्वितीय हुई। मथुरा और सारनाथ में बुद्ध की अद्भुत मूर्तियां रखी हैं। सबसे अधिक मार्के की बात तो यह है कि वह युग हिन्दू वैष्णव राजाओं का था, पर बौद्ध मूर्तियां जितनी तब सुन्दर बनीं, उतनी कभी नहीं। राष्ट्रीयता का ज़माना था; ग्रीक असर को भी भारतीय जामा पहनाकर पूरा-पूरा अपना लिया गया। ढाली हुई धातु की मूर्तियों के तो क्या कहने। उनके जोड़ की चीजें कहीं नहीं। उसी काल के लोहे का खम्भा दिल्ली में कुतुबमीनार के पास गड़ा है, सदियों से

धूप-पानी फैल रहा है, पर ज़रा जंग नहीं लगी। इसी प्रकार मिट्टी की मूर्तियाँ और खिलौने भी गज़ब के हैं। पच्छिमी घाट के अजन्ता की गुफाओं के अभिराम चित्र तभी के बने हैं, जिनकी गणना संसार के सबसे सुन्दर चित्रों में है। ग्वालियर के पास बाघ नाम की गुफाओं के चित्र भी कुछ घटकर नहीं। और तो और, गुप्त-सिक्के भी अपनी दिशा में आप ही प्रमाण हैं।

गुप्त-साम्राज्य को हूणों ने तोड़ डाला। हूणों ने संसार के अनेक साम्राज्य तोड़े थे, अब गुप्तों का साम्राज्य तोड़ डाला। उनकी क्रूरता जगत्-प्रसिद्ध थी, पर उनकी क्रूरता का बदला भी हिन्दुस्तान ने उसी तरह दिया, जिस तरह कभी अशोक ने सिकन्दर के हमले का दिया था। हूणों के अपने देश, चीन के कान्सू प्रान्त में बौद्ध पण्डितों नें, हूणों के घर में ही बुद्ध के शान्तिमय उपदेशों का प्रचार शुरू किया, जब वे हमारी सुनहरी सभ्यता का हमारे देश में सर्वनाश कर रहे थे। कान्सू में तानेहुआंग नामक ४६९ गुफाओं में अजन्ता की नकल में चित्र बने हैं। यही भारतीय संस्कृति की विशेषतायें या बुलन्दियां हैं—बदी का बदला, कायर न होते हुए भी, नेकी से देना और दूसरों की संस्कृति को पचाकर सर्वथा अपना कर लेना। यह जितना गुप्तकाल में हुआ उतना शायद कभी और नहीं हुआ।

चीनी यात्री फाह्यान ने तभी के भारतीयों की सुरुचि,

सुभाषा और सदाचरण का बखान किया है। पर एक बात जो इस सारी बुलन्दी पर कालिख पोत देती है, वह है उस समय का अछूतों के साथ बर्ताव। उनका आज का रूप शायद तभी खासकर बना। फाह्यान लिखता है कि वे नगर के बाहर रखे जाते थे और जब कभी शहर में जाते थे, उन्हें लकड़ियाँ बजाते जाना पड़ता था, जिससे सवर्ण हिन्दू हट जायें और इनसे छू जाने से अपवित्र न हो जायें। जिसने मनुस्मृति पढ़ी है, वह जानता है कि यह झूठ नहीं है। उस सुनहरे युग का सोना जितना चमकता है, अफ़सोस कि उसकी यह कालिमा भी उतनी ही चमकीली है।

गुप्तों के समय ही नालन्दा का वह विश्वविद्यालय शुरू हुआ जो हर्षवर्धन के समय संसार भर में विख्यात हुआ। हुएनसांग लिखता है कि वहाँ दस हजार विद्यार्थी पढ़ते थे और सौ विद्वान् एक साथ विविध विषयों पर व्याख्यान देते थे। वहाँ दाखिला बड़ा कठिन था। एक से एक पण्डित-आचार्य पढ़ाने का काम करते थे। कुछ ही काल पहले भर्तृहरि हुआ था जिसकी पुस्तकें वहाँ पढ़ाई जाती थीं। उस नालन्दा के खण्डहर राजगिरि के पास खोद निकाले गए हैं।

भर्तृहरि

बाण श्रौर मयूर तो हर्ष के दरबारी कवि थे ही, स्वयं राजा भी बड़ा सफल नाटककार था । नागानन्द उसका प्रसिद्ध नाटक है ।

कुछ ही काल बाद मालाबार के अचरज के मेधावी दार्शनिक शंकराचार्य ने बौद्धों से सफल लोहा लिया। उन्हीं के तर्क का उनके ही विरुद्ध प्रयोग किया। शैव धर्म को उनसे बड़ी शक्ति मिली । देश की दूर-दूर की सीमाश्रों पर शिव के मन्दिर श्रौर शैवमठ कायम हुए। कुमारिल ने भी तभी जैनियों से शास्त्रार्थ कर हिन्दू विश्वासों की जड़ मजबूत की ।

: ८ :

कहा जा चुका है कि जब-जब हमारी संस्कृति का विदेशी संस्कृति से सम्बन्ध हुआ, तब-तब हमारी संस्कृति में नई जान आई। हूणों ने निश्चय इस देश में बड़ी बरबादियाँ कीं, पर इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि उनको भी हमने हज़म कर लिया। बल्कि केवल उन्हीं को नहीं दूसरी बाहर से आई जातियों को भी, क्योंकि हूणों के अलावा उस काल गुर्जर आदि और भी जातियाँ यहाँ आई थीं। अहीरों ने तो शकों के जाने के साथ ही यहाँ अपने राज्य कायम किए थे। इन्हीं जातियों से हमारी राजपूत जातियों का उदय हुआ। गुर्जर, प्रतिहार, चौहान, परमार आदि चार राजपूत घरानों के लिए कहा भी जाता है कि उन्हें वशिष्ठ ने आबू पर्वत पर यज्ञ कर अग्नि से उत्पन्न किया, जिससे वे अग्नि-कुल के कहलाते हैं। लगता है कि एक बार जैसे पहले ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के विरुद्ध शूद्रों से साझा किया था वैसे ही फिर इन विदेशियों को नए क्षत्रिय बनाकर अपनी शक्ति बढ़ाई। उन्हें शुद्ध कर राजतूत बना लिया।

जो भी हो, हमें मालूम है कि इन राजपूतों का अपने इतिहास में कितना गौरवशाली स्थान रहा है। हमारी

धौंकनी से ढलकर विदेशी हमारी संस्कृति के महान् रक्षक हुए। एक बार शक, कुषाण और शाही इसी प्रकार काबुल में राज्य स्थापित कर हमारे सिंह-द्वार की रक्षा करते रहे थे। फिर क्षत्रिय साहिय जिन्होंने सदियों उत्तर से आने वाली जातियों से हमारी रक्षा की। जयपाल, आनन्दपाल उसी साहिय वंश के थे, जिन्होंने महमूद गजनी और उसके पिता से लोहा लिया। वे पहले विदेशी थे जो हममें घुलमिल कर हमारे देश के सन्तरी होगए थे। यही हाल हूणों, गूजरों आदि का भी हुआ। उन्होंने हमारे देश की वीरता की मूर्ति राजपूतों को अपनी काया से सिरजा; उनकी क्रूरता तपकर इस देश में राजपूतों की वीरता बन गई। राजपूतों के कार्य भारत के इतिहास में सोने के अक्षरों में लिखे जाने लायक हैं।

उनका संगठन कबीलों का था। कबीलों का एक सरदार होता था, सरदारों का एक राजा। युद्ध को ही इन्होंने अपना कर्तव्य माना और एक बार कुम्भा और सांगा के समय बड़ा साम्राज्य कायम किया। उनके पहले प्रतिहारों, चौहानों, परमारों, चालुक्यों, राष्ट्रकूटों आदि ने भी बड़े-बड़े राज्य कायम किये थे। सारा भारत दक्खिन तक उनके अधिकार में हो गया था। परमारों की राजधानी पहले उज्जैन फिर धारा हुई। उस कुल के राजा मुंज और भोज विद्या के क्षेत्र में बड़े मशहूर होगए हैं। बड़े-बड़े कवि और लेखक उनके

दरबार में रहते थे। भोज ने तो स्वयं अनेक ग्रंथ लिखे थे।

राजपूतों के आरम्भ काल में बंगाल वालों ने भारतीय संस्कृति का बड़ा उपकार किया था। वे शूद्र और बौद्ध थे, भारत की निचली जातियों के प्रतिनिधि। उनके पहले राजा को जनता ने चुना भी था। उन्होंने तिब्बत में खासकर बौद्ध धर्म का प्रचार कराया। पाल-काल में ताँबे पीतल की सुन्दर मूर्तियां बनीं। पालों ने विक्रमशिला, नालन्दा आदि विद्यापीठों की धन से सहायता की।

पालों के बाद बंगाल के राजा सेन हुए। ये दक्खिन के ब्राह्मण थे। इन्हीं के अन्तिम राजा लक्षणसेन का कवि जयदेव था जिसके बराबर मधुर कवि संस्कृत में दूसरा नहीं। परन्तु जनता राजनीति से इतनी उदासीन होगई थी कि जब बख्त्यार अपने इने-गिने सवारों को लिए नालन्दा को बरबाद करते बिहार-बंगाल लांघते गौड़ पहुँचा तो किसी ने उसे नहीं रोका।

मुसलमानों को नई शक्ति को चोट चौहानों और गाहडवालों को सहनी पड़ी। वैसे तो अरब हर्ष के कुछ ही काल बाद सिन्ध को जीत उसमें जा बसे थे, पर उनसे इस देश का कुछ संघर्ष नहीं हुआ था, क्योंकि अरब जहाँ समता का प्रकाश लेकर गए, वहाँ वे उनसे सीखते और उन्हें सिखाते थे। सिन्ध में वे सदियों हिन्दू राजाओं के बीच रहे, पर न उन्होंने यहाँ वालों को हानि पहुँचाई न यहाँ वालों ने उनको। उनके कर

: ६ :

दक्खिन में आंध्रों के बाद अनेक राज्य कायम हुए, जिनमें कई पुराने भी थे—पांडव, चोल, केरल, पल्लव आदि। इन्होंने दीर्घ काल तक भारतीय संस्कृति को अपने रूप में ढाला। इनका भी विदेशियों से बड़ा सम्पर्क हुआ, पर व्यापार के सिलसिले में। मिस्र, रोम, काबुल, अरब से इनका बड़ा व्यापार चलता था, विशेषकर गरम मसाले और मोती का। इनके देश में धारासार सोना बरसता था। दक्खिन में रोम, मिस्र, अरब से अनेक लोग आकर बसे। बहुत पहले सीरिया से ईसाई आकर तभी बस गए थे, जब अभी यूरोप के देश ईसाई नहीं हुए थे। इसी तरह अपने धर्म की रक्षा के लिए ईरान से भागे पारसियों को भी भारत के पच्छिमी तट पर शरण मिली।

इन दक्खिनी राजाओं ने पत्थर की शिलाएं काटकर या ईंट-पत्थर के विशाल मन्दिर बनवाए। ये मन्दिर क्या हैं, नगर हैं। अनेक मन्दिर तंजोर, मदुरा आदि में बने। राष्ट्र-कूटों ने भी अजन्ता की ही भांति एलोरा की गुफा और मन्दिर बनवाए थे, जिनमें शिव का कैलास अद्भुत हुआ। उसी

भारत में यह सहिष्णुता खूब निभी। कारण कि गुप्तकाल से ही धर्मों का एक समत्व हो गया था। जिस प्रकार यहाँ की जनता ने विदेशी लोगों को पचा लिया था, उसी प्रकार मत-मतान्तरों को भी घुला-मिलाकर एक कर लिया। सब देवता सब के थे।

दक्खिन में वर्णधर्म ने भी भयानक रूप धारण किया। अछूतों की स्थिति दिन पर दिन खराब होती गई। उनकी छाया से भी सवर्ण हिन्दू भागने लगे। फिर एक दिशा में दक्खिनियों ने ग़ज़ब की उन्नति की—गाँव की व्यवस्था में। उनके गाँव नगरों और राजधानियों से आज़ाद थे। वैसे तो भारत के सभी गाँवों में आत्मनिर्भरता थी, पर विशेषकर दक्खिन के गाँवों ने तो एक छोटा-मोटा प्रजातन्त्र ही कायम कर लिया। उनकी अपनी-अपनी जनता की अनेक समितियां थीं, जो कर उगाहकर राजा को देती थीं; कुओं-तालाबों-मन्दिरों तथा शिक्षा का प्रबन्ध करती थीं; खेत, सिंचाई आदि की व्यवस्था करती थीं। वास्तव में गाँव अपनी व्यवस्था में
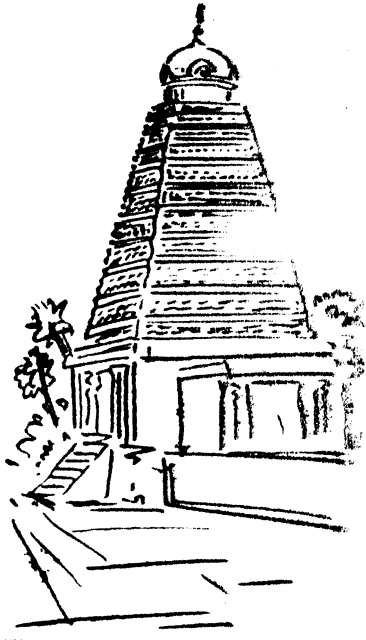
शिलाएँ काटकर बना मन्दिर

बिलकुल आज़ाद थे।

उनके यहाँ भी उत्तर भारत की ही तरह श्रेष्ठि आदि बैंक का भी काम करते थे। अपने पास रखी हुई सम्पत्ति पर ऋण और ब्याज देना उनका काम था। अनेक लोग भेड़-बकरियाँ और दूसरे मवेशी इन श्रेष्ठियों को इसलिए दे देते थे कि उनके नाम पर मन्दिरों में दिये जलवाते रहें। मवेशी मूलधन का काम करते थे और चूंकि वे सदियों कायम रहते थे, दिये जलवाते रहते थे। नए पैदा होने वाले मवेशी लाभ के जरिए बनते थे।

दसवीं-ग्यारहवीं सदियों में उत्तर-पूरबी भारत में बौद्ध और शाक्त धर्म का बोलबाला हुआ। पहले से ही लोग स्मृतियों की जकड़ से घबड़ा गए थे। वर्णधर्म कमज़ोर पड़ता जा रहा था; नीचे की जातियाँ अपनी भयंकर स्थिति से ऊपर उठने की कोशिश कर रही थीं, इसीसे कभी बौद्धों और भागवतों की संख्या उन्होंने बढ़ाई थी; अब वे तांत्रिकों को बढ़ाने लगे, क्योंकि इन सभी ने छूतछात और जातपांत का टंटा उठा लिया था। बौद्ध और शक्ति-पूजक, अपने विचारों और पूजा में अधिकतर एक-से थे। उन्होंने उस काल इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाने की नहीं, भोग की मांग कर साधना करने की बात कही। उनके अनेक सिद्ध यह सब करके भी महात्मा बने रहे। पर साधारण लोगों के लिए तो ऐसा सम्भव न था। फिर तो भोग-विलास, शराब

को धूम मच गई। उड़ीसा के कोणार्क, भुवनेश्वर और पुरी में तथा उत्तरप्रदेश के खजुराहा में जो मन्दिर बने, उन पर अश्लील हजारों मूर्त्तियाँ लगा दी गईं। समाज की स्थिति छिन्न-भिन्न हो गई।

मुसलमानों के पहले आने वाले विदेशी अधिकतर गँवार कहे जाते थे। न उनका कोई अपना धर्म था, न जीवन-दर्शन था, न कोई सामाजिक संगठन था। इससे इस देश का उन्हें पचा लेना आसान रहा था। पर इस्लाम अपने नए विचारों, नई मान्यताओं, समता के अपने आदर्शों को साथ लाया था। उसका खो जाना सम्भव न था; फिर वह तो लोगों को अपने आदर्शों में दीक्षित करना चाहता था। इससे वह हिन्दू-विश्वास में न समा सका। फिर हिन्दुओं की जातपांतों, ऊँच-नीच, छुआछूत-भरे सामाजिक संगठन में वह समा भी कहाँ जाता? इससे न केवल राजनीति बल्कि सांस्कृतिक संघर्ष भी दोनों में चल पड़ा, जिसका नतीजा हालांकि अच्छा ही हुआ। भारत संस्कृतियों के सामंजस्य का विरोधी कभी नहीं रहा था। इस संघर्ष से भी उसे लाभ हुआ—नई विचार-धाराएँ, नए विश्वास, नये साहित्य, नये लिबास, नई-नई कलायें उसकी हुईं।

इस्लाम ने जहां हिन्दू सामाजिक संगठन को झकझोर दिया था, वहां उसने अपनी ओर से मनुष्य की समता और

एकता का आदर्श भी सामने रखा। दोनों संस्कृतियों के संघर्ष और सम्मिलन से नए तत्वों का उदय हुआ और कबीर, नानक-से उदार और पाखंड-विरोधी सन्तों ने साहस के साथ अन्धविश्वासियों को धिक्कारा। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनों को फटकरा और उनमें एकता और भाई-चारे के बीज बोये। इस्लाम के साथ ही हमारे देश में एक नई आवाज़ आई थी, जो इस्लाम की कट्टरता के सर्वथा विरुद्ध थी। वह आवाज़ सूफी धर्म की थी। जन-जन में घट-घट-व्यापी एक भगवान् का बास, आपस में घने प्रेम का प्रचार, इन सूफियों का मक्कसद था। उनके सिद्धान्त स्वयं हमारे वेदान्त से प्रभावित थे और अब वे आप हमारे विश्वासों को
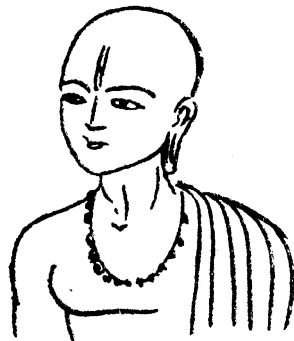
जायसी चैतन्य

प्रभावित करने लगे। कबीर और नानक के भारतीय परम्परा में रहते ही सूफी विचारों ने उन्हें प्रभावित किया।

हिन्दू-मुस्लिम की एकता के सबसे सुन्दर नमूने कबीर और नानक थे, यद्यपि सूफी धर्म के विख्यात पंडित, अवधि के पहले प्रबन्ध-काव्य पद्मावत के कवि, मलिक मुहम्मद जायसी हुए। सूफियों के अतिरिक्त वैष्णवों में भी प्रेम-प्रचार की बड़ी

ज्ञानेश्वर तुकाराम

गहरी लगन थी और रामकृष्ण को इष्ट मान उन्होंने प्रेम का घर-घर प्रचार किया। कबीर और नानक के अलावा दूसरे सन्तों में विख्यात चैतन्य, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, सूरदास,

सूरदास मीरा तुलसी

मीरा आदि थे। उनसे पहले रामानुज ने अपने दर्शन के प्रचार के साथ ही साथ विष्णु की महिमा गाई थी। रामानन्द कबीर के गुरु थे, जिन्होंने साहस के साथ हिन्दू-मुसलमान दोनों को अपना चेला बनाया था। बाद में बल्लभ ने आनन्द स्वरूप उस विष्णु की चर्चा की, जिनका संदेश मधुर वाणी में सूर और मीरा गा उठे। अकबर के समय सन्त तुलसी ने समाज को एक नये सिरे से देखा और पारिवारिक सम्बन्ध को कर्तव्य की निष्ठा से फिर से संगठित करने के विचार से 'रामचरितमानस' में रामकथा को फिर से गाया। उसमें पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई के परस्पर कर्तव्य की सहज चर्चा कर घर-घर नैतिकता का प्रचार किया। आज साढ़े तीन सौ सालों से उस महान् सन्त के दोहे-चौपाई विद्वान् और गँवार दोनों की जबान पर हैं।

इस्लाम की दूसरी खूबी भारत को उर्दू की देन थी। खड़ी बोली का सही विकास उर्दू और हिन्दी के रूप में मूलतः उस नई शक्ति से ही हुआ। गुलाम बादशाह बलबन

बलबन

का समकालीन कवि अमीर खुसरो हिन्दी-उर्दू दोनों प्रकार की कविता का आदिकर्त्ता था। हिन्दी के भंडार में उर्दू के जरिये लाई बाहरी परम्पराओं की भी धारासार वर्षा हुई। हिन्दू-मुसलमान दोनों ने हिन्दी-उर्दू के कलेवर को सजाया। खुसरो, जायसी, रहीम, बाजबहादुर, रसखान, आलम, वगैरह ने अपने लक्ष्य और गायन का उल्लास कविता में भरा। नई परम्परा शब्द और अर्थ के रूप में रीतिकाल के कवियों को भी अनेकधा प्रभावित करती रही। केशव, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण सभी पर वह प्रभाव पड़ा और उस प्रभाव से वे शक्तिमान् बने। उर्दू तो हिन्दू-मुसलमान दोनों की बनाई बड़ी प्यारी सम्पदा है।

रहीम

पठानों के शासन में जनता की संस्कृति में, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, काफी फर्क पड़ा। अनेक इमारतों ने भी कला का मुख उज्ज्वल किया। नई, विदेशी, मध्य और पच्छिमी एशिया से आई शिल्पकला ने यहाँ की भवन-निर्माण की शैली में अपनी नई धारा जोड़ी। परन्तु फ़िरोज़शाह तुग़लक आदि ने जो देश में गुलामी-प्रथा का इतना विस्तार किया, वह कुछ कम भयानक न था। लाखों की तादाद में वे

अभागे दिल्ली की सल्तनत को सिर से उठाये हुए थे। फ़िरोज़-शाह ने जागीरदारी का नियम चलाकर भी प्रान्तों की जनता की काफी हानि की।

मुग़लों का युग निश्चय समृद्धि का था। देश दूर तक एक शासन में आ गया था। और औरंगज़ेब को छोड़ ज्यादातर बादशाह उदार थे। उस उदारता का मस्तक अकबर था, जिसने प्रजा को बराबर समझने में अशोक की नीति की याद ताज़ी कर दी। उसने हिन्दू-मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी धर्मों के पंडितों को बुलाकर उनकी बहस सुनी और धार्मिक एकता के दर्शन पर विचार किया। सब धर्मों की अच्छाइयाँ इकट्ठी कर उसने अपने नये धर्म दीन-इलाही को संवारा। अफ़सोस, पंडितों की जड़ता के कारण उसका प्रचार न हो सका। अकबर ने हिन्दू-मुसलमान दोनों में प्रेम पैदा करने की बड़ी कोशिश की। दोनों में विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने के भी प्रयत्न किये।

राजपूत अकबर की नई नीति के अधिकतर कायल हो गए थे, जिससे मुग़ल सल्तनत की नींव मज़बूत हुई। मगर मेवाड़ ने अकबर के सामने भी अपनी आज़ादी कायम रखने की जी-जान से कोशिश की। यद्यपि उसे उस आज़ादी की बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। चित्तौड़गढ़ बरबाद हो गया और राणा प्रताप को पच्चीस वर्ष, मरने तक, दर-दर की खाक छाननी पड़ी। पर प्रताप और उसके मेवाड़ ने आज़ादी

के लिए बलिदान का चमकता आदर्श समाज के सामने रखा। और आज भी स्वतन्त्रता के प्रेमी हल्दी-घाटी, चित्तौड़ और राणा की कसमें खाते हैं। उसी आज़ादी की परम्परा को दूसरे तरीके से कट्टर मुग़ल शहंशाह औरंगज़ेब से लड़कर शिवाजी ने बढ़ाया। शिवाजी ने अपढ़-ग़रीब मराठे किसानों को राष्ट्र के रूप में संगठित कर, देश में एक बड़ी शक्ति बना ली। पहली बार उस राष्ट्र का संचालन मंत्रियों की सलाह से उस काल में होने लगा।

मुग़लों का युग भारतीय कला की उन्नति का युग था। उन्होंने जो हमें लिबास दिया, वही हमारा राष्ट्रीय लिबास बना। चित्रकला की अकबर और जहांगीर के समय गज़ब की उन्नति हुई। मुग़ल कलम चित्रकारी की सफाई और बारीकी में दुनिया में अपना सानी नहीं रखती। राजस्थानी और रागिनी चित्र भी तब बड़ी संख्या में राजस्थान में बनते थे। रागिनी चित्रों ने तो संगीत के रागों और रागनियों को भी रूप-दान दिया। कुछ ही समय बाद औरंगज़ेब की बेरुखी से दिल्ली-आगरे के चित्रकार संरक्षा के अभाव में बिखर गए। परन्तु जहां-जहां वे गए, वहां उन्होंने चित्रशैली की नई बेलें लगाईं, जो काफी फली-फूलीं। उनमें पहाड़ी कलम विशेष उल्लेखनीय है, जो कई रेखाओं में विकसित हुई। इसी प्रकार मुग़लों के कुछ पहले से ही हैदराबाद में दक्खिनी क़लम के चित्र बनने लगे थे। गुजरात में प्राचीन काल से

जैनों से प्रभावित एक चित्र-परम्परा चली आती थी; जिसकी धारा ने शुरू में राजस्थानी और दक्खिनी दोनों कलमों को सींचा।

इमारतों के निर्माण में मुग़लों ने जो तत्परता दिखाई, वह असाधारण थी। किले, मस्जिदें, इमामबाड़े ऐसे बने कि उनकी तारीफ़ नहीं की जा सकती। दिल्ली और आगरा के किले तो मशहूर हैं ही, वहाँ की जामा मस्ज़िद और मोती मस्ज़िद भी खूबसूरती का नमूना हैं। परन्तु इमारतों की खूबसूरती में जो स्थान शाहजहाँ के बनवाये आगरे के ताजमहल का है, वह दुनिया की किसी इमारत का नहीं। ताज इसीलिए संसार के आश्चर्यों में गिना जाता है।

मुसलमान, विशेष कर मुग़ल बादशाहों के प्रोत्साहन से देश की संगीत-कला भी खूब फली-फूली। प्राचीन राग-राग-नियों में नये सुर और ताल जा मिले। ख्याल, ठुमरी, दादरा,
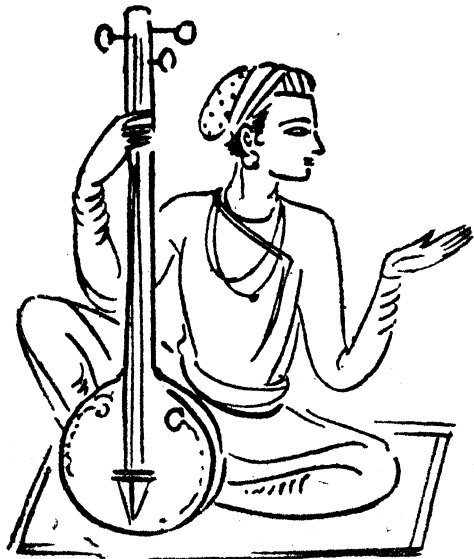
तानसेन

ग़ज़ल, कितनी ही चीज़ें भारतीय संगीत की मधुरता बढ़ाने लगीं। ध्रुपद का लासानी कलावन्त, तानसेन अकबर के नौ रत्नों में था।

: ११ :

अठारहवीं सदी से यूरोपीय सभ्यता का कुछ-कुछ आभास हिन्दुस्तानियों को मिलने लगा था। बहुत पहले भी यूरोपीय समुद्र की राह आकर दक्खिनो-पच्छिमी हिन्दुस्तान में बस गये थे। पर हमारी संस्कृति पर उनका इतना असर न पड़ा, जितना अंग्रेजों का। अंग्रेजों के इस दूरगामी प्रभाव का कारण विशेषतः यह था कि वे हमारे मुल्क पर डेढ़ सौ साल तक राज्य करते रहे थे। विजेता के रूप में अब तक जो लोग इस मुल्क में आए थे; यहीं बस गये थे, पर अंग्रेज यहाँ बस न सके और सात समुद्र पार से हम पर राज्य करते रहे। इसका नतीजा यह हुआ कि उनको हिन्दुस्तान से कोई दिलचस्पी न रही, सिवाय उसका धन लूटकर समुद्र पार ले जाने से। उन्होंने औद्योगिक क्रान्ति से होने वाली अपनी मिलों के माल की उपज की खपत के लिए इस देश को बाजार बनाया और यहाँ के उद्योग-धन्धे जो जमाने से चले आते थे, बन्द करा दिये। कारीगरों के अंगूठे और हाथ तक कटवा दिये। कारीगर बेकार हो गये। अपने शासन के लिए क्लर्क तैयार करने के लिए उन्होंने यहाँ विश्वविद्यालय खोले और माल और फौज ढोने के लिए रेल चलाई। पर हमारी संस्कृति की पुरानी रीति ने फिर अपना रूप दिखाया और आगे एक मंजिल और सर कर ली। नई

संस्कृति से उसने अपने लाभ की बहुत-सी बातें सीख लीं। विश्वविद्यालयों में जो अंग्रेज़ी का अध्ययन शुरू हुआ तो उससे शिक्षा-साहित्य और विज्ञान पर बड़ा गहरा असर पड़ा। हिन्दुस्तान के सारे प्रान्तीय साहित्यों ने योरोप की साहित्यिक शैलियाँ अपनाईं और प्रगति की। काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना सभी पर अंग्रेजी का

रवीन्द्रनाथ ठाकुर महात्मा गांधी

गहरा असर पड़ा। पश्चिमी दर्शन और विज्ञान भी नए सिरे से पढ़े जाने लगे। यूरोपीय विद्वानों ने अपनी खोज और परिश्रम से हमारे प्राचीन साहित्य को पढ़कर और जमीन खोदकर हमारे इतिहास और संस्कृति पर प्रकाश डाला।

रवीन्द्रनाथ और गांधी हमारी संस्कृति के जितनी उपज थे, उतनी ही योरोपीय संस्कृति के भी। इस देश का भी थोड़ा-बहुत औद्योगीकरण हुआ, जिससे अनेक मिलें खुलीं, देश की आबादी बड़ी संख्या में शहरों में पहुँची और मजदूरों के हकों की माँग हुई। कारखानों के मजदूरों का संगठन कई प्रकार की यूनियनों में हुआ। मार्क्सवाद का प्रचार जोर पकड़ चला। आजादी की लड़ाई भी चल पड़ी। पहले अनेक उदार, धार्मिक, प्रगतिशील सुधारक, आन्दोलन चले; फिर

राजा राममोहनराय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

राजनीतिक। राजा राममोहनराय और विद्यासागर ने समाज की कुरीतियों का विरोध किया; ब्रह्मसमाज ने उपनिषदों और अंग्रेजी संस्कृति का एक प्रकार से समन्वय समाज के सामने रखा; स्वामी दयानन्द ने अनेक सुधारों के लिए आर्य-

समाज की स्थापना की।

स्वामी दयानन्द

सन् सत्तावन से ही आज़ादी की लहर देश में बह चली थी। वह धीरे-धीरे तूफान बनी। काँग्रेस के आन्दोलन ने पहले अहिंसा और सत्य के रूप में असहयोग-आन्दोलन का देशव्यापी संगठन किया। फिर कई प्रकार से स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी जाने लगी। देश आजाद हुआ और हमने यूरोपीय तरीके से अपने शासन का संगठन किया। हमारा आज का पार्लमेंट यूरोपीय जनतन्त्र की ही देन है।

: १२ :

आज की हमारी संस्कृति से अनेक लोगों को निराशा होती है क्योंकि उनका कहना है कि हम संस्कृति की अधूरी हवा में साँस ले रहे हैं जो न पच्छिम की है न पूरब की, न नयी न पुरानी। परन्तु यही भारतीय संस्कृति की विजय है। उसने पच्छिम और पूरब, नये और पुराने में कभी कोई भेद न डाला और अपनी निजी रीढ़ कायम रखते हुए अपने शरीर के अंगों को उन साधनों से वह पुष्ट करती गई। आज भी वह उसी रूप में नए-पुराने, पच्छिम-पूरब से अपना सांस्कृतिक आहार खींच रही है। जब तब वह अपनी शक्ति के लिए पीछे देख लेती है—जैसे अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रेरणा से उसने कभी अजन्ता की ओर देखा था—परन्तु वह जानती है कि उसका मार्ग सामने है। वह मानव-जाति मात्र को अपनी इकाई मानती है। शान्ति और प्रेम उसके सम्बल हैं।